अल-रिसाला

जनवरी-फ़रवरी 2026



अल-रिसाला
जनवरी-फ़रवरी 2026

CPS International
centre for peace and spirituality

माहनामा 'अल-रिसाला' को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख़्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें।

नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

संपादकीय टीम
ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी
आरिफ़ हुसैन आलम, सैफ़ अनवर
फ़रहाद अहमद, इरफ़ान रशीदी

Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

cpsglobal.org
twitter.com/WahiduddinKhan
facebook.com/maulanawkhan
youtube.com/CPSInternational
+91-99999 44118
t.me/maulanawahiduddinkhan
linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan
instagram.com/maulanawahiduddinkhan

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact
Goodword Books
Tel. 011-41827083,
Mobile: +91-8588822672
E-mail: sales@goodwordbooks.com

Goodword Bank Details
Goodword Books
State Bank of India
A/c No. 30286472791
IFSC Code: SBIN0009109
Nizamuddin West Market Branch

विषय-सूची

हासिल-ए-ज़िंदगी	4
साइरन बज गया	7
ख़ालिक़ की मारिफ़त	8
ख़ालिक़ की तरफ़ वापसी	10
शिर्क, तौहीद	11
हुस्ने रिफाक़त का मुआशरा	14
तवाज़ो की सिफ़त	15
शर में ख़ैर	16
कोई मुसीबत, मुसीबत नहीं	18
कामयाब इंसान	19
जंग का हुक्म	21
मुस्बत ज़ेहन के साथ जीना	22
ख़ून का रिश्ता	23
ख़तरा, ख़तरा, ख़तरा	25
हदीस और क़ुरान	26
इज्तिहाद क्या है?	27
इज्तिहाद की ज़रूरत	29
क्यों है यह आम बे-ख़बरी?	32
कसावत क्या है?	35

अमानी और फ़िक्री ज़वाल 36
कश्मीर का ख़्वाब 39
तशद्दुद की तज़ईन 40
इंसान, आला इंसान 41
तस्बीह-ए-फ़ातिमा 44
ज़िक्र-ए-जारि 46
इल्मी उस्लूब, अकैडमिक उस्लूब 47
डायरी 1986 50
एक इंटरव्यू 54
ग़ैर-नज़आई तरीक़ा 60
दोहरा ख़सारा 61
तशब्बुह-बिल काफ़िर 62
ज़िंदगी की तल्ख़िया 64
ख़बरनामा इस्लामी मरकज़ 287 65

हासिल-ए-ज़िंदगी

24 नवंबर 2025 को बॉलीवुड के मशहूर अदाकार धरमेंद्र (पैदाइश 8 दिसंबर 1935) का इंतिकाल हो गया। बी बी सी उर्दू की वेबसाइट ने उनकी वफ़ात की ख़बर देते हुए पहला जुमला यह लिखा है: इंडियन सिनेमा के 'ही मैन' कहे जाने वाले अदाकार धरमेंद्र 89 बरस की उम्र में वफ़ात पा गए हैं।

एन डी टी वी ने अपने यूट्यूब चैनल पर उनका आख़िरी वीडियो पैग़ाम (25 नवंबर 2025) नश्र किया है, जो उन्होंने अपने फैन्स को दिया था। चैनल ने इसको हस्ब-ज़ेल उन्वान दिया:

> Dharmendra's Last Video Message
>
> 38 सेकंड की वीडियो में उनका पैग़ाम यह है:
>
> दोस्तो,
>
> "सब कुछ पाकर भी हासिले ज़िंदगी कुछ भी नहीं। कमबख़्त जान क्यों जाती है जाते हुए। पता नहीं कहाँ ले जाएँगे, कौन ले जाएगा, कैसे साथ ले जाएँगे, बहरहाल, ह्यूमन नेचर है, इकट्ठा करते रहो, अपने आपसे मुहब्बत करो, अपना ख़याल रखो और ज़िंदगी को एंजॉय करो।''
>
> No one knows where we will be taken, who will take us, or how we will be taken. In any case, it is human nature to keep accumulating. So, love yourself, take care, and enjoy life.

इंसान अपनी सारी उम्र ख़ुशी की तलाश में सरगर्दाँ रहता है। हर औरत और हर मर्द चाहता है कि वह ज़िंदगी को एंजॉय करे, उसको

ऐसी ख़ुशी हासिल हो जाए, जिसके बाद कोई ग़म न हो। मगर अमली सूरत-ए-हाल यह होती है कि इंतिहाई कोशिश के बावजूद उसका सफ़र एक नाख़ुशी से दूसरी नाख़ुशी की तरफ़ जारी रहता है। इसी के साथ उसका मामला यह भी होता है कि उसकी अंदरूनी आवाज़ उसे एक मुस्तक़िल अंदेशे में मुब्तला रखती है: मरने के बाद क्या होगा? यह वह सवाल है जो दिल की गहराइयों में बेचैनी पैदा करता रहता है।

इंसानी ज़िंदगी का मुताला बताता है कि मौजूदा दुनिया इसलिए नहीं बनाई गई कि इंसान को यहाँ कामिल ख़ुशी (happiness) हासिल हो। इसी लिए आख़िर में उसके पास जो कुछ रह जाता है, उसे धरमेंद्र की एक फ़िल्म में यूँ बयान किया गया है: कुछ पाने की चाह, कुछ और बेहतर की तलाश—इसी चक्कर में इंसान अपना सब कुछ खो देता है जो उसके पास होता है। तलाश कभी ख़त्म नहीं होती, वक़्त ख़त्म हो जाता है। (बी० बी० सी० उर्दू, 24 नवंबर 2025)

इंसानी तारीख़ में किसी भी इंसान को कुदरत के क़ानून से छूट हासिल नहीं है। इस सिलसिले में अमरीका के मशहूर मिशनरी बिली ग्राहम (1918-2018) ने चंद हक़ीक़ी मिसालों का ज़िक्र किया है, जो गोया पूरी इंसानी तारीख़ की तर्जुमानी है:

A french philosopher once said, “The whrole world is on a mad quest for security and happiness.” A Texas millionaire confided, “I thought money could buy happiness—I have been miserably disillusioned.” A famous film star broke down: “I have money, beauty, glamour, and popularity. I should be the happiest woman in the world, but I am miserable. Why?” One of Britain’s top social leaders said, “I have lost all desire to live, yet

I have everything to live for. What is the matter?" A man went to see a psychiatrist. He said, "Doctor, I am lonely, despondent, and miserable. Can you help me?" The psychiatrist suggested that he go to a circus and see a famous clown who was said to make even the most despondent laugh with merriment. His patient said, "I am that clown." A college senior said, "I am twenty-three. I have lived through enough experiences to be old, and I am already fed up with life." A famous Grecian dancer of a generation ago once said, "I have never been alone but that my hands trembled, my eyes filled with tears, and my heart ached for peace and happiness I have never found." (The Secret of Happiness by Billy Graham, ch. The Search for Happiness)

इस दुनिया में किसी को भी हक़ीक़ी मानों में ख़ुशी हासिल नहीं। यहाँ तक कि बज़ाहिर ख़ुशी में जीना भी इंसान को बोरडम का शिकार बना देता है, जो अपने आप में बेख़ुशी का ज़ाहिरा है। ऐसा क्यों है। अस्ल यह है कि मंसूबा-ए-तख़्लीक़ के मुताबिक, हर इंसान के लिए मौजूदा दुनिया में हासिल-ए-ज़िंदगी यही है कि वह ऐसा सरमाया जमा करने की मंसूबाबंदी करे जो न सिर्फ़ उसे इस दुनिया में एक अच्छा इंसान बनाए, बल्कि उस नामालूम अगली दुनिया में भी उसे एक अच्छे इंसान की हैसियत अता करे। मौत इस हक़ीक़त का ऐलान है कि आप एक ऐसे मुक़ाम की तरफ़ जाने वाले हैं जिसे आप अभी तक बिल्कुल भी नहीं जानते। बुढ़ापा, बीमारी और दीगर कमज़ोरियाँ इस अटल फ़ितरी क़ानून की जब्री याददिहानी हैं। यानी मौत के बाद हमें यक़ीनन एक इंतिहाई नामालूम मुक़ाम की तरफ़ ले जाया जाएगा, इससे बचने

की कोई सूरत मुमकिन नहीं। अक़्लमंद वह नहीं जिसका मक़सद यह हो कि वह इस दुनिया में ज़्यादा से ज़्यादा हासिल कर ले। दूरअंदेश वह है जो यह सोचकर ज़िंदगी गुज़ारे कि मरने के बाद उसे किन चीज़ों की ज़रूरत होगी, और वह उसी हिसाब से अपना सरमाया इकट्ठा करे।

(डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम)

साइरन बज गया

29 अगस्त 2010 (18 रमज़ान 1431 हि०) को इफ़्तार का वक़्त 6 बजकर 50 मिनट पर था। ठीक वक़्त पर क़रीब की मस्जिद से साइरन की आवाज़ आई। अचानक मुझे ख़याल आया कि यह साइरन इसलिए बजा है कि लोग रोज़ा तोड़कर अब खाना-पीना शुरू कर दें। एक वक़्त आने वाला है, जब कि एक और साइरन यह बताने के लिए बजेगा कि लोगो, बस अब खाने-पीने का वक़्त ख़त्म हो गया। हर चीज़ छोड़कर मैदाने-हश्र की तरफ़ दौड़ो। अब तक खाना-पीना सबको मिल रहा था, मगर अब खाना-पीना सिर्फ़ उस इंसान को मिलेगा जो ख़ुदाई इम्तिहान में कामयाब रहा।

मोमिन वह है जिसके अंदर आख़िरतरुख़ी सोच पैदा हो जाए। जब किसी इंसान के अंदर इस क़िस्म की सोच पैदा हो जाए तो उसका यह हाल हो जाता है कि मौजूदा दुनिया में उसको आख़िरत की झलक दिखाई देने लगती है। ज़िंदगी का हर तजुर्बा उसके लिए आख़िरत की याददिहानी बन जाता है। जिस्मानी तौर पर मौत से पहले की दुनिया में रहते हुए नफ़्सियाती तौर पर वह मौत के बाद आने वाली दुनिया का बाशिंदा बन जाता है।

यही कैफ़ियत किसी इंसान के लिए उसकी रूहानी तरक़्क़ी की गारंटी बनती है। किसी आदमी की रूहानी तरक़्क़ी के लिए ज़रूरी होता है कि उसको मुसलसल तौर पर रूहानी ग़िज़ा मिलती रहे। यह रूहानी ग़िज़ा आदमी को किसी ख़ला में नहीं मिलती, यह रूहानी ग़िज़ा इसी माद्दी (material) दुनिया में मिलती है।

रोज़ाना का तजुर्बा है कि आदमी माद्दी ग़िज़ा खाता है, और वह जिस्म के अंदर दाख़िल होकर ख़ून बन जाती है। इसी तरह आदमी को अपने अंदर सलाहियत पैदा करना चाहिए कि माद्दी तजुर्बात उसके अंदर रूहानी सबक़ में ढल जाएँ। यह सलाहियत रूहानी तरक़्क़ी की लाज़िमी शर्त है। यह सलाहियत किसी आदमी के अंदर शऊरी अमल के ज़रिये पैदा होती है, वह कभी करामाती तौर पर पैदा नहीं होती।

ख़ालिक़ की मारिफ़त

कायनात के साइंसी मुताला से मालूम होता है कि हैरत अंगेज़ सतह पर कायनात का निज़ाम क़ायम है। इसके मुताला का लाज़िमी नतीजा यह होना चाहिए कि इंसान इस हक़ीक़त को दरियाफ़्त करे कि इस कायनात का कोई पैदा करने वाला और चलाने वाला ज़रूर मौजूद है, जो इस बेहद वसीअ और पेचीदा कायनाती निज़ाम को इंतिहाई आला दर्जे की हिकमत के साथ चला रहा है। इसके बावजूद इंसानी तारीख़ की सबसे बड़ी ट्रैजिडी यह है कि इंसान जिस हक़ीक़त से सबसे ज़्यादा नावाक़िफ़ और बेख़बर रहा है, वह ख़ालिक़े-कायनात की मारिफ़त है। इस हक़ीक़त को मालिक बिन दीनार ताबिई (वफ़ात 127 हि०) ने दुरुस्त तौर पर इन अल्फ़ाज़ में बयान किया है:

خَرَجَ أَهْلُ الدُّنْيَا مِنَ الدُّنْيَا وَلَمْ يَذُوقُوا أَطْيَبَ شَيْءٍ فِيهَا۔ قَالُوا :وَمَا هُوَ يَا أَبَا يَحْيَى؟ قَالَ:مَعْرِفَةُ اللهِ تَعَالَى

यानी, अहले-दुनिया, दुनिया से चले गए, और उसकी सबसे पाकीज़ा चीज़ को नहीं चखा, लोगों ने पूछा, वह क्या है, ऐ अबू यह्या, उन्होंने जवाब दिया: अल्लाह की मारिफ़त।(हिल्यतुल औलिया, V. 2, p. 357)

अल्लाह का रास्ता सिराते-मुस्तक़ीम कहलाता है, यानी दुरुस्त रास्ता। जो इंसान सिराते-मुस्तक़ीम को पहचानकर उस पर साबितक़दमी के साथ चलता रहे, वह गुमराही से महफ़ूज़ रहेगा। इसलिए हर इंसान का पहला और बुनियादी काम यह है कि वह सिराते-मुस्तक़ीम और ग़ैर सिराते-मुस्तक़ीम की दुरुस्त पहचान हासिल करे। यानी सही और ग़लत के इम्तियाज़ के साथ ज़िंदगी का सफ़र तय करे। जो शख़्स इस पहचान से महरूम रह जाता है, वह ज़िंदगी के मुख़्तलिफ़ रास्तों में भटकता रहता है, हालाँकि वह इस गुमान में रहता है कि वह दुरुस्त और मतलूब रास्ते पर चल रहा है।

जो आदमी मारिफ़त की मंज़िल तक पहुँचना चाहता है, उसको सबसे पहले यह जानना चाहिए कि मारिफ़त के रास्ते का नुक़्ता-ए-आग़ाज़ क्या है। सही नुक़्ता-ए-आग़ाज़ से अपना सफ़र शुरू करने वाला मंज़िल पर पहुँचेगा, और जो शख़्स सही नुक़्ता-ए-आग़ाज़ की पहचान से महरूम रहे, वह हमेशा मुख़्तलिफ़ रास्तों में भटकता रहेगा, और सही मंज़िल से महरूम रहेगा। आदमी को इससे बचना चाहिए कि वह हर खुले रास्ते पर चल पड़े, और आख़िर में उसका अंजाम यह हो कि वह कभी अपनी मंज़िले-मक़सूद पर न पहुँचे। इसलिए आदमी को चाहिए कि वह अपने सफ़र का आग़ाज़ सही और ग़लत की पहचान से शुरू करे और उसका सिरा ख़ुदा की मारिफ़त है।

ख़ालिक़ की तरफ़ वापसी

क़ुरान में ज़िंदगी की हक़ीक़त को इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है:

وَأَنْ لَيْسَ لِلْإِنْسَانِ إِلَّا مَا سَعَى، وَأَنَّ سَعْيَهُ سَوْفَ يُرَى ، ثُمَّ يُجْزَاهُ الْجَزَاءَ الْأَوْفَى ، وَأَنَّ إِلَى رَبِّكَ الْمُنْتَهَى:

यानी, इंसान के लिए वही है जो उसने कमाया, और यह कि उसकी कमाई अनक़रीब देखी जाएगी, फिर उसको पूरा बदला दिया जाएगा, और यह कि सबको तुम्हारे रब तक पहुँचना है।(53:39-42)

अल्लाह रब्बुल आलमीन ने इंसान को एक मंसूबे के तहत पैदा किया, और उसको सय्यारा-ए-ज़मीन जैसे एक ग़ैर-मामूली प्लैनेट पर आबाद किया। ज़मीन सोलर सिस्टम का एक हिस्सा है। इस दुनिया में हर चीज़ कस्टम मेड (custom-made) अंदाज़ में बनाई गई, और यहाँ इंसान को पूरी आज़ादी दी गई। यहाँ के माहौल में फ़रिश्तों की निगरानी में उन अफ़राद को चुना जा रहा है, जो ख़ालिक़ के तख़्लीक़ी प्लान (creation plan of God) को समझें, और उसके मुताबिक, सेल्फ डिसिप्लिन्ड लाइफ़ (self-disciplined life) गुज़ारकर इस बात का सुबूत दें कि वह जन्नत की अबदी दुनिया में बसाए जाने के क़ाबिल हैं।

ख़ालिक़ के तख़्लीक़ी नक़्शे के मुताबिक़, यह एक फ़ितरी हक़ीक़त का मामला है। लेकिन कुछ लोगों ने इसे शायराना अंदाज़ में पेश करके एक रोमांटिक तसव्वुर बना दिया। मसलन फ़ख़रुद्दीन इराक़ी (592-688 हि०) एक फ़ारसी सूफ़ी शायर और फ़लसफ़ी था। वह ईरान में पैदा हुआ और शाम में उसकी वफ़ात हुई। उसकी एक नज़्म का एक शेर यह है:

‘ब-तवाफ़-ए-काबा रफ़्तम, ब-हरम राहम नदादंद

कि बिरून-ए-दर चे करदी, कि दरून-ए-ख़ाना आई’

यानी मैं काबा के तवाफ़ के लिए गया, मगर मुझको उसमें दाख़िले की राह नहीं मिली, और आवाज़ आई कि बाहर तुमने क्या किया है कि अंदर आने की कोशिश कर रहे हो। इस शेर में शायर ने एक इबादती मामले को रोमांटिक तसव्वुर के रूप में ढाल दिया है। इबादत एक हक़ीक़ी तजुर्बा है। इस हक़ीक़त को शायर ने रूमानी ख़याल की ज़बान में बयान किया है।

शिर्क, तौहीद

शिर्क और तौहीद को आम तौर पर बुतों को पूजने या न पूजने तक महदूद समझ लिया जाता है। जो आदमी बज़ाहिर बुत को पूजे, वह मुशरिक है और जो आदमी बज़ाहिर बुत को न पूजे, वह मुवह्हिद है। मगर यह शिर्क और तौहीद का एक बेहद कमतर अंदाज़ा है। हक़ीक़त यह है कि शिर्क का ताल्लुक़ इंसान की गहरी नफ़्सियात से है। इंसान ख़ुद अपनी नफ़्सियात की सतह पर मुशरिक या मुवह्हिद बनता है, न कि सिर्फ़ आँखों से दिखाई देने वाले किसी बुत की मौजूदगी से।

अस्ल यह है कि इंसान के अंदर एक इंतिहाई ताक़तवर जज़्बा मौजूद है। यह मुहब्बत का जज़्बा है, यानी किसी के लिए स्ट्रॉन्ग अफेक्शन (strong affection) का होना। इस शदीद जज़्बा-ए-मुहब्बत को इंसान अगर किसी ग़ैर-ख़ुदा के साथ वाबस्ता (associate) करे तो वह शिर्क है, और अगर वह इस जज़्बे को अल्लाह के साथ मख़सूस कर दे तो वह तौहीद है।

यही वह हक़ीक़त है, जो क़ुरान में इन अल्फ़ाज़ में बयान की गई है:

وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّتَّخِذُ مِنْ دُوْنِ اللهِ اَنْدَادًا
يُّحِبُّوْنَهُمْ كَحُبِّ اللهِ، وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَشَدُّ حُبًّا لِلهِ

यानी, कुछ लोग ऐसे हैं, जो अल्लाह के सिवा दूसरों को उसके बराबर ठहराते हैं। वह उनसे ऐसी मुहब्बत रखते हैं, जैसी मुहब्बत अल्लाह से रखनी चाहिए। और जो अहले-ईमान हैं, वह सबसे ज़्यादा अल्लाह से मुहब्बत करने वाले हैं।(2:165)

अल्लाह से हुब्बे-शदीद (strong affection) अस्लन एक क़ल्बी हालत का नाम है। ताहम उसके कुछ ख़ारिजी निशानियाँ हैं। उसका एक निशानी यह है कि ऐसा आदमी अल्लाह से अपने शिद्दते-ताल्लुक़ की बिना पर मजबूर होता है कि वह बार-बार अल्लाह का ज़िक्र करे। उसकी मजलिस में गहरी कैफ़ियत के साथ अल्लाह का ज़िक्र करता रहे। उसके दिमाग़ में ऐसा फ़िक्री भूंचाल जारी रहे, जो एक धमाका बनकर लफ़्ज़ों में ज़ाहिर हो जाए—यह गहरा क़ल्बी ताल्लुक़ अगर किसी ग़ैरुल्लाह से हो तो वह शिर्क है और अगर वह अल्लाह से हो तो इसी का नाम तौहीद है। आख़िरत में मुशरिक के लिए जहन्नम है और मुवह्हिद के लिए जन्नत।

सूरह अलम नशरह का सबक़ क़ुरान की सूरतुल इंशिराह (94) का तर्जुमा यह है:

> ‘‘क्या हमने तुम्हारा सीना तुम्हारे लिए खोल नहीं दिया। और तुम्हारा बोझ उतार दिया, जिसने तुम्हारी पीठ झुका दी थी। और हमने तुम्हारा ज़िक्र बुलंद किया। पस मुश्किल के साथ आसानी है। बेशक मुश्किल के साथ आसानी है। फिर जब तुम फ़ारिग़ हो जाओ तो मेहनत करो। और अपने रब की तरफ़ तवज्जोह रखो।’’

क़ुरान की इस सूरह को आम तौर पर रसूलुल्लाह ﷺ की शख़्सी फ़ज़ीलत के मानी में लिया जाता है। एक मुफस्सिर-ए-क़ुरान लिखते हैं:

سورةُ الشَّرْحِ سورةٌ مَكِّيَّةٌ، تَتَحَدَّثُ عَنْ مَكانَةِ الرَّسولِ الجَليلَةِ، وَمَقامِهِ الرَّفيعِ عِندَ اللهِ تَعالى

यानी, सूरतुल इंशिराह एक मक्की सूरह है। वह रसूलुल्लाह ﷺ के अज़ीम मक़ाम और मरतबे को बयान करती है, जो आपका अल्लाह के नज़दीक है।(तफ़्सीरुल-क़ुरआनिल-अज़ीम, अम्मा, अब्दुल मलिक अल-क़ासिम, p. 125)

मगर यह बात दुरुस्त नहीं। हक़ीक़त यह है कि क़ुरान की इस सूरह में पैग़म्बर-ए-इस्लाम के हवाले से अल्लाह की एक ऐसी रहमत का ज़िक्र किया गया है, जो सबके लिए है।। जब एक इंसान सच्चाई का मुतलाशी (seeker) बनता है, फिर वह सच्चाई को दरियाफ़्त करता है, उसको अल्लाह की मारिफ़त हासिल होती है, ज़िक्र व दुआ के ज़रिये वह अल्लाह से ताल्लुक़ क़ायम करता है। उस वक़्त एक सच्चे इंसान को आला मारिफ़त की सूरत में जो रहमतें हासिल होती हैं, उनको इस सूरत में बयान किया गया है। इस रहमत के पाँच पहलू हैं:

फ़िक्री वुज़ूह (clarity of thought)

मामलात को मुस्बत अंदाज़ में देखना (positive approach)

मसाइल के बजाय मवाक़े पर ध्यान देना (focussing on opportunity)

अपने औक़ाते-कार की तंज़ीम (time management)

ख़ुदारुख़ी ज़ेहन (God-oriented man)

इन पाँच सिफ़ात के साथ जो शख़्सियत बने, उस शख़्सियत का शरई नाम मोमिन और मुसलमान है।

हुस्ने रिफाक़त का मुआशरा

जन्नत क्या है। जन्नत के बारे में क़ुरान में आया है:

وَاللهُ يَدْعُو إِلَى دَارِ السَّلَامِ

यानी, और अल्लाह अम्न के घर की तरफ़ बुलाता है।(10:25) इस हक़ीक़त को जन्नत के हवाले से दूसरे मक़ाम पर इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है:

لَا يَسْمَعُونَ فِيهَا لَغْوًا وَلَا تَأْثِيمًا ، إِلَّا قِيلًا سَلَامًا سَلَامًا

यानी, उसमें वह कोई फ़िज़ूल और गुनाह की बात नहीं सुनेंगे, मगर सिर्फ़ सलाम-सलाम के बोल।(56:25-26)

क़ुरान की इन आयात पर ग़ौर करने से जन्नत की जो तस्वीर बनती है, वह यह है कि जन्नत हुस्ने रिफाक़त का मुआशरा होगा (अन्निसा, 4:69)। इसका मतलब यह है कि जन्नत में मुकम्मल तौर परअम्न का माहौल होगा। इसलिए जन्नत में वही लोग जगह पाएँगे, जो दुनिया की ज़िंदगी में यह साबित कर चुके हों कि वह हक़ीक़ी मानों में अपने समाज के पुरअम्न शहरी बनकर रह सकते हैं।

जन्नत में बसाने के लिए ऐसे लोग मुंतख़ब किए जाएँगे, जो दुनिया की ज़िंदगी में यह साबित कर चुके हों कि वह पूरे मानों में आला किरदार के हामिल हैं, जो दुनिया की ज़िंदगी में दूसरे इंसानों के साथ हुस्ने रिफाक़त का मामला करें, जिनका हाल यह हो कि उनके दिलों में दूसरे इंसानों के लिए अम्न और ख़ैरख़्वाही के जज़्बात के सिवा कुछ और न हो।

मौजूदा दुनिया जन्नत के लिए अहलियत साबित करने का मक़ाम है, यानी यह साबित करने का मक़ाम कि इस दुनिया की ज़िंदगी में कोई

इंसान ख़ुदा और उसके बंदों के साथ किस तरह ज़िंदगी गुज़ारता है। जो इंसान अपने आपको इस इम्तिहान में कामयाब करेगा, वही वह इंसान है, जो जन्नत का मुस्तहिक़ होगा। हदीस में है कि दो सिफ़ात सबसे ज़्यादा इंसानों के जन्नत में दाख़िले का सबब बनेंगी: तक़वा और हुस्ने अख़्लाक़ (सुनन तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 2004)। तक़वा नाम है अल्लाह से क़ुर्बत का, और हुस्ने अख़्लाक़ नाम है इस बात का कि आदमी दुनिया में सेल्फ़ डिसिप्लिन (self-discipline) की ज़िंदगी गुज़ारे। वह समाज में एक नो-प्रॉब्लम इंसान (no problem person) बनकर रहे।

तवाज़ो की सिफ़त

तवाज़ो (modesty) मौजूदा दुनिया में सबसे ज़्यादा क़ाबिले-क़द्र इंसानी सिफ़त है। इस सिलसिले में पैग़म्बर-ए-इस्लाम की अहलिया आयशा रज़िo (वफ़ात 57 हिo) का एक ब-मानी क़ौल इन अल्फ़ाज़ में आया है:

عَنْ عَائِشَةَ قَالَتْ إِنَّكُمْ لَتَدَعُونَ أَفْضَلَ الْعِبَادَةِ التَّوَاضُعَ

यानी, आयशा ने कहा: बेशक तुम लोग तर्क करते हो अफ़ज़ल इबादत को, यानी तवाज़ो। (मुसन्नफ़ इब्न अबी शैबा, हदीस नंबर 34739)

तवाज़ो (modesty) दरअस्ल उस सिफ़त का नतीजा है, जो अपनी हक़ीक़ते वाक़ई को समझने के नतीजे में पैदा होती है। तवाज़ो तमाम खूबियों का सरचश्मा है। इसके बरअक्स दूसरी सिफ़त यह है कि आदमी अपने आपको हक़ीक़ते वाक़िया से ज़्यादा समझे। इसको फ़ख़्र कहते हैं। किसी आदमी को पहचानना हो तो दो चीज़ों के ज़रिये उसकी शख़्सियत को पहचाना जा सकता है: जिस आदमी के अंदर फ़ख़्र की

नफ़्सियात हो वह हर एतबार से एक ग़ैर मतलूब शख़्सियत का हामिल होगा, और जिस आदमी के अंदर तवाज़ो की नफ़्सियात हो उसकी शख़्सियत के अंदर तमाम मतलूब औसाफ़ पाए जाएँगे। जिस आदमी के अंदर तवाज़ो की नफ़्सियात पाई जाए, उसका हाल यह होगा कि वह हर चीज़ को ख़ुदा की निस्बत से देखेगा, न कि इंसान की निस्बत से।

कोई आदमी मॉडेस्ट (modest) कैसे बन सकता है। इसका सबसे बड़ा ज़रिया यह है कि आदमी अपने एहतिसाब का ज़्यादा से ज़्यादा ख़्वाहिशमंद बन जाए। इसका फ़ायदा यह है कि आदमी के अंदर सीखने की सिफ़त बहुत ज़्यादा बढ़ जाती है। इसकी वजह से वह किसी नफ़्सियाती रुकावट के बग़ैर दूसरों से सीखने लगता है। किसी क़िस्म की बड़ाई का जज़्बा उसके लिए ज़ेहनी तरक़्क़ी में रुकावट नहीं रहता। वह इतना ज़्यादा मुतलाशी (seeker) बन जाता है कि जब भी कोई विज़्डम की बात उसके सामने आती है तो वह किसी रुकावट के बग़ैर फ़ौरन उसको क़ुबूल कर लेता है।

तवाज़ो (modesty) इंसान की बुनियादी अख़लाक़ी सिफ़त है। जिस आदमी के अंदर मॉडेस्टी हो, उसके अंदर बक़िया तमाम अख़लाक़ी सिफ़ात ज़रूर मौजूद होंगे, और जिस आदमी के अंदर मॉडेस्टी की सिफ़त न हो, तो वह यक़ीनी तौर पर दूसरे तमाम आला अख़लाक़ी औसाफ़ से ख़ाली होगा।

शर में ख़ैर

5 हि० में वह वाक़िआ पेश आया जिसको अफ़्क़ कहा जाता है। यह एक ना-ख़ुशगवार वाक़िआ था। इसकी तफ़सील क़ुरान की

सूरतुन-नूर (24:11-21) और हदीस और सीरत की किताबों में देखी जा सकती है। इस ना-ख़ुशगवार वाक़िए के तज़्किरे के ज़ेल में एक हकीमाना नसीहत इन अल्फ़ाज़ में आई है:

لَا تَحْسَبُوْهُ شَرًّا لَّكُمْ،بَلْ هُوَخَيْرٌ لَّكُمْ

यानी, तुम इसको अपने हक़ में बुरा न समझो, बल्कि यह तुम्हारे लिए बेहतर है।(24:11)

क़ुरान की इस आयत का ताल्लुक़ सिर्फ़ अफ़क़ के वाक़िए से नहीं है, बल्कि इसमें एक उसूली और आफ़ाक़ी तालीम दी गई है। वह यह कि इस दुनिया को बनाने वाले ने उसको इस तरह बनाया है कि यहाँ कोई शर (ना-मुवाफ़िक़ सूरत-ए-हाल) सिर्फ़ शर नहीं, बल्कि इस दुनिया में हर शर के अंदर एक ख़ैर (मुवाफ़िक़ सूरत-ए-हाल) का पहलू छिपा हुआ है:

There is good in every evil.

क़दीम मदीना में अफ़क़ का जो वाक़िआ पेश आया, वह बज़ाहिर शर का एक वाक़िआ था, मगर उसमें ख़ैर का एक पहलू गहराई के साथ छुपा हुआ था। वह यह कि उसकी वजह से मदीना और एतिराफ़-ए-मदीना में इस्लाम और पैग़म्बर-ए-इस्लाम का चर्चा बहुत बढ़ गया। प्रोपेगंडे की इस फ़िज़ा के दौरान लोगों के अंदर इस्लाम के बारे में बड़े पैमाने पर तजस्सुस (curiosity) का मिज़ाज पैदा हुआ। लोग चाहने लगे कि वह जानें कि इस्लाम क्या है और पैग़म्बर-ए-इस्लाम का मिशन क्या है। यह गोया इस्लाम की हक़ीक़त को समझने के लिए एक नया मौक़ा था। अहले-ईमान ने इस मौक़े को पुरअम्न तौर पर इस्तेमाल किया, यहाँ तक कि इस्लाम का दायरा बहुत ज़्यादा बढ़ गया।

यही सूरत-ए-हाल आज भी सारी दुनिया में पाई जाती है। मौजूदा ज़माना मीडिया का ज़माना है। मौजूदा ज़माने में पहले से भी ज़्यादा बड़े पैमाने पर इस्लाम के ख़िलाफ़ प्रोपेगंडा किया गया है। इस प्रोपेगंडे

ने मौजूदा ज़माने में इस्लामी दावत के लिए अज़ीम मवाक़े पैदा कर दिए हैं। ज़रूरत है कि इन मवाक़े को पुरअम्न अंदाज़ में भरपूर तौर पर इस्तेमाल किया जाए।

कोई मुसीबत, मुसीबत नहीं

ग़ज़वा-ए-उहुद 3 हि० में पेश आया। इस ग़ज़वा में मुसलमानों को जानी नुक़सान उठाना पड़ा। ग़ज़वा-ए-उहुद के ज़ेल में किताबों में बहुत से वाक़ियात आए हैं, उनमें से एक वाक़िआ यह है:

مَرَّ رَسُولُ اللهِ صلى الله عليه وسلم بِامْرَأَةٍ مِنْ بَنِي دِينَارٍ، وَقَدْ أُصِيبَ زَوْجُهَا وَأَخُوهَا وَأَبُوهَا مَعَ رَسُولِ اللهِ صلى الله عليه وسلم بِأُحُدٍ، فَلَمَّا نُعُوا لَهَا، قَالَتْ:فَمَا فَعَلَ رَسُولُ اللهِ صلى الله عليه وسلم؟ قَالُوا:خَيْرًا يَا أُمَّ فُلَانٍ، هُوَ بِحَمْدِ اللهِ كَمَا تُحِبِّينَ، قَالَتْ: أَرُونِيهِ حَتَّى أَنْظُرَ إِلَيْهِ؟ قَالَ:فَأُشِيرَ لَهَا إِلَيْهِ، حَتَّى إِذَا رَأَتْهُ قَالَتْ:كُلُّ مُصِيبَةٍ بَعْدَكَ جَلَلٌ!

यानी, रसूलुल्लाह ﷺ अंसार के क़बीले बनू दीनार की एक औरत के पास से गुज़रे, जिसके शौहर और भाई और बाप उहुद के दिन रसूलुल्लाह की तरफ़ से क़तल हो गए थे। जब उसको इन तीनों की मौत की ख़बर पहुँची तो उसने कहा: रसूलुल्लाह का क्या हुआ। लोगों ने कहा कि अलहम्दुलिल्लाह, वह अच्छे हैं, ऐ उम्मे फ़ुलान, जैसा कि तुम पसंद करती हो। उस औरत ने कहा: मुझे दिखाओ, ताकि मैं उनको देख लूँ। लोगों ने उस औरत को आपकी तरफ़ इशारा किया, यहाँ तक कि उसने आपको देखा और कहा: आपके बाद हर मुसीबत छोटी है।

(सीरत इब्न हिशाम, V. 2, p. 99)

जिस शख़्स को इस्लाम की सच्चाई एक दरियाफ़्त के तौर पर हासिल हो जाए, उसे ऐसी हक़ीक़त मिलती है जो उसके नज़दीक तमाम हक़ीक़तों से बढ़कर होती है। वह छोटी बातों से उठकर ज़्यादा बड़ी बात में जीने लगता है। ऐसा आदमी इस पोज़िशन में होता है कि अगर उस पर कोई आफ़त पड़े तो वह उसको मोतदिल अंदाज़ में (ठंडे दिल से) बर्दाश्त कर ले। वह यह कह सके कि छोटी मुसीबत पेश आई तो कोई बात नहीं, बड़ा सरमाया तो अभी मेरे पास मौजूद है।

इंसान के अंदर यह ज़ेहन कैसे बने। इसका तरीक़ा यह है कि आदमी हक़ीक़त-पसंद बने। वह छोटी बातों से ऊपर उठकर ज़्यादा बड़ी बात में जीने वाला बन जाए। इसी को हक़ीक़त-पसंदाना तर्ज़-ए-फ़िक्र (realistic approach) कहा जाता है।

कामयाब इंसान

कामयाब इंसान कौन है। कामयाब इंसान के लिए ज़रूरी है कि उसके अंदर दूरअंदेशी की सिफ़त पाई जाए, और मुस्तक़बिल-बिनी कसरत-ए-मुताला और कसरत-ए-ग़ौर व फ़िक्र से पैदा होती है। मसलन रसूलुल्लाह ﷺ ने अपनी तहरीक में कई बार ऐसा किया कि बज़ाहिर पीछे हटने का तरीक़ा इख़्तियार किया। क्योंकि आपकी दूरअंदेशी ने आपको बताया कि बज़ाहिर वक़्ती तौर पर पीछे हटने में आपके लिए आगे बढ़ने का रास्ता खुलेगा।

मिसाल के तौर पर रसूलुल्लाह ﷺ ने तेरह साल तक मक्का में अपना दावती मिशन चलाया। लेकिन मामला जब ख़राब होने लगा, यानी मक्का में आपका रहना दुश्वार हो गया तो आपने मक्का

से हिजरत का रास्ता इख़्तियार किया। इसके बाद जब आप मदीना आ गए तो यहाँ भी अहले मक्का ने आपको जंग में उलझाना चाहा। लेकिन आपने दुबारा हुदैबिया के मक़ाम पर एकतरफ़ा तौर पर फ़रीक़-ए-सानी की शर्तों को मानकर उनसे दस साला नाजंग मुआहिदा कर लिया। इससे तआरुफ़-ए-इस्लाम का मैदान आपके लिए पूरी तरह खुल गया। इसके बाद जो नतीजा सामने आया, वह इस्लामी तारीख़ में फ़तह-ए-मुबीन (अल-फ़तह, 48:1) के अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है, यानी खुली फ़तह।

दूरअंदेशी के लिए ज़रूरी है कि इंसान के अंदर ऑब्जेक्टिव थिंकिंग (objective thinking) मौजूद हो। ऑब्जेक्टिव थिंकिंग का मतलब है—जज़्बात की बुनियाद पर चीज़ों को देखने के बजाय हक़ाइक़ की बुनियाद पर चीज़ों को देखना:

When you do something objectively, you do it with an open mind, considering the facts rather than your personal feelings.

ऑब्जेक्टिव थिंकिंग से दूरी का सबसे बड़ा सबब किसी चीज़ के बारे में इंतिहापसंदाना अंदाज़ में राय बना ले। यानी कंडीशन्ड माइंड के साथ चीज़ों को देखना। इस क़िस्म का इनहिराफ़ या डिस्ट्रैक्शन (distraction) किसी इंसान के लिए बेहद संगीन है। वह इंसान को इस सिफ़त से महरूम कर देता है कि वह चीज़ों को ऐज़ इट इज़ (as it is) देख सके, वह चीज़ों को मवाक़े के एतबार से देखने के बजाय मसाइल के एतबार से देखने लगता है। जबकि कामयाबी के लिए ज़रूरी है कि इंसान मवाक़े को अवेल करे।

जंग का हुक्म

क़ुरान में एक आयत आई है, उसका तर्जुमा यह है:तुमको जंग का हुक्म हुआ है और वो तुमको गिरां मालूम होती है। हो सकता है कि तुम एक चीज़ को नागवार समझो और वह तुम्हारे लिए भली हो। और हो सकता है कि तुम एक चीज़ को पसंद करो और वह तुम्हारे लिए बुरी हो। और अल्लाह जानता है, तुम नहीं जानते।(2:216)

फ़ुक़हा-ए-इस्लाम के नज़दीक इस्लाम में जंग की हैसियत हुस्न-लिग़ैरिही की है, न कि नमाज़ व रोज़ा की मानिंद कोई अबदी शरीअत। अस्ल मामला यह है कि सातवीं सदी से पहले, जब इस्लाम आया, तारीख़ में सदियों के असर से एक ग़लत रिवाज क़ायम हो चुका था। तवील तारीख़ी रिवायत के नतीजे में मज़हब लोगों के लिए सियासी वफ़ादारी का मयार बन चुका था, यानी जो शख़्स हाकिम के मज़हब पर होता, वह रियासत का वफ़ादार समझा जाता, और जो हाकिम के मज़हब पर न होता, वह रियासत का वफ़ादार भी नहीं माना जाता था। इसी बुनियाद पर यह एक जायज़ अमल समझ लिया गया था कि जो इंसान अपने हाकिम के मज़हब को छोड़ दे, उसे क़त्ल कर दिया जाए या ऐसे लोगों के ख़िलाफ़ बाक़ायदा जंग करके उनका ख़ातमा कर दिया जाए। इसी रिवाज के नतीजे में समाज में वह गंभीर बुराई पैदा हुई जिसे मज़हबी ज़ुल्म और जब्र (religious persecution) कहा जाता है।

इस्लाम में जब जंग का हुक्म आया तो जो लोग इस मामले को गहराई के साथ नहीं समझ रहे थे, उनके लिए यह एक नागवारी का मामला था।(अल-बक़रह, 2:216) हालाँकि यह एक वक़्ती रुकावट को दूर करने का मामला था। इस्लाम ने यह चाहा कि सख़्त कार्रवाई के ज़रिये हमेशा के लिए इसका ख़ातमा कर दिया जाए, ताकि अगली नस्लों के

लिए अम्न और आज़ादी के साथ सच्चे मज़हब को चुनने और उस पर अमल करने के मवाक़े हासिल हो जाएँ। इसके नतीजे में तारीख़ में एक मुस्तक़िल तब्दीली का दौर आने वाला था। इसके नतीजे में पहली बार दुनिया में पुरअम्न दौर आने वाला था, और हमेशा के लिए किसी रुकावट के बग़ैर आलमी सतह पर मज़हब के तआरुफ़ का दरवाज़ा खुलने वाला था। गोया कि यह जंग, जंग के आग़ाज़ के मानी में नहीं थी, बल्कि जंग के ख़ातमे के मानी में थी।

मुस्बत ज़ेहन के साथ जीना

मुस्बत (positive) नफ़्सियात के साथ जीना, एक लफ़्ज़ में यह है कि आदमी दुनिया में इस यक़ीन के साथ जिए कि अल्लाह रब्बुल आलमीन उसका ख़ालिक़ व मालिक है, वह रहीम व करीम है। वह अपने बंदे के साथ उस वक़्त भी होता है जबकि कोई दूसरा उसके साथ नहीं होता। वह उस वक़्त भी अपने बंदे का मददगार होता है जबकि कोई इंसान उसकी मदद करने के लिए तैयार नहीं होता।

एक मुसलमान नौजवान मुझसे मेरे ऑफ़िस में मिले। उन्होंने मुझसे यह शिकायत की कि वह फ़ुलाँ मुसलमान से मिलना चाहते थे, लेकिन उनको वक़्त नहीं मिला। मैंने उनको नसीहत करते हुए समझाया कि जब इंसान से आपको मुलाक़ात का वक़्त न मिले, तो आप अल्लाह को याद कीजिए। आप यह कहिए कि इंसान से अगर मुलाक़ात नहीं हो सकी, कोई बात नहीं, अल्लाह तो हर वक़्त मुलाक़ात के लिए मौजूद है। यह सोच आपके यक़ीन को बढ़ाएगी। यह सोच आपके ज़ेहनी इर्तिक़ा(intellectual development) में इज़ाफ़ा करेगी। आप

इंसान को खो कर अल्लाह को पा लेंगे। आपकी महरूमी आपको एक नई दरियाफ़्त तक पहुँचा देगी। आपका खोना आपके लिए एक नई दरियाफ़्त का ज़रिया बन जाएगा।

यह सिर्फ़ किसी से मुलाक़ात की हद तक नहीं है। बल्कि हर एक मामले में आप यही सोच इख़्तियार कीजिए। मसलन किसी ने आपको कोई चीज़ नहीं दी तो आप सोचिए कि ख़ुदा देने वाला है, वह हर वक़्त देने के लिए मौजूद है। इस वक़्त आप इस मामले में अल्लाह ताला से दुआ कीजिए। मनफ़ी (negative) अंदाज़ में सोचना आदमी की महरूमी में इज़ाफ़ा करता है। इसके बरअक्स, मुस्बत अंदाज़ में सोचना आदमी के ज़ेहनी और रूहानी इर्तिक़ा (spiritual development) का ज़रिया बन जाता है।

हर खोने में दुबारा पाने का राज़ छुपा हुआ है। इंसान को अल्लाह ने सोचने की ताक़त दी है। यह ताक़त बिला-शुब्हा सबसे बड़ी नेमत है। अपने ज़ेहन को हमेशा ज़िंदा रखिए, और आप देखेंगे कि आपका ज़ेहन आपका सबसे बड़ा सरमाया है। इस सरमाए से बड़ी चीज़ आपके लिए नहीं है। इस सरमाए को इस्तेमाल कीजिए, और आप देखेंगे कि आपके ज़ेहनी सरमाए ने आपको दुनिया का सबसे बड़ा रूहानी इंसान बना दिया है।

ख़ून का रिश्ता

समाजी ज़िंदगी में इंसान के लिए समाजी ताल्लुक़ का एक निहायत ताक़तवर जज़्बा वह है जिसे ख़ून का रिश्ता कहा जाता है। यह एक ऐसा ताल्लुक़ है जो इंसानों के दरमियान एक गहरा रूहानी बंधन क़ायम कर

देता है, जो किसी और ज़रिए से मुमकिन नहीं। दूसरे तमाम रिश्ते किसी न किसी शर्त के तहत क़ायम होते हैं, लेकिन ख़ून का रिश्ता वाहिद रिश्ता है जो हर शर्त से बालातर होता है। बाक़ी तमाम रिश्ते मफ़ाद (interest) पर क़ायम होते हैं, जबकि ख़ून का रिश्ता ऐसा ताल्लुक़ है जो नस्ल की बुनियाद पर क़ायम होता है, न कि किसी मफ़ाद पर।

ख़ून का रिश्ता ख़ालिक़ की एक ऐसी नेमत है जो नाक़ाबिले-फ़हम हद तक हैरतअंगेज़ है। ख़ून अपने आप में एक माद्दी चीज़ है, मगर ख़ूनी रिश्ते के साथ जो जज़्बाती वाबस्तगी, हमदर्दी और क़ुर्बानी का जज़्बा पैदा होता है, वह ज़ाहिरी और माद्दी तशरीह से ऊपर है।। हैवानात के अंदर भी ख़ून पाया जाता है, लेकिन उनमें ख़ूनी रिश्ते के साथ वाबस्ता यह अख़लाक़ी और जज़्बाती शऊर मौजूद नहीं होता। इसी बिना पर वह इंसानी मानों में ख़ानदानी और समाजी निज़ाम क़ायम नहीं कर पाते। यह अम्र क़ाबिले-तवज्जोह है कि अगरचे हैवानात में भी ख़ून और जीनिय्याती (genetic) रब्त पाया जाता है, लेकिन उनके दरमियान इंसानी सतह का समाज और अख़लाक़ी निज़ाम तश्कील नहीं पाता। इसकी बुनियादी वजह यह है कि इंसान के ख़ालिक़ ने इंसान को शऊर, अख़लाक़ी एहसास और मानवी क़द्रें अता की हैं, जो ख़ूनी रिश्ते को महज़ हयातियाती (biological) ताल्लुक़ के बजाय एक बा-मानी ताल्लुक़ की सतह पर पहुँचा देती हैं।

ख़ूनी रिश्ता अपनी पाकीज़गी के एतबार से एक रूहानी रिश्ता है। ताहम ख़ूनी रिश्ते के इमकानात से वही शख़्स भरपूर फ़ायदा उठा सकता है जो गहरी मारिफ़त की सतह पर इसकी अहमियत को दरियाफ़्त करे, जो शिकायत की नफ़्सियात से आज़ाद होकर ख़ूनी रिश्ते की क़दर करना जानता हो। ख़ूनी रिश्ते की क़दर करना दरहक़ीक़त रहमत-ए-ख़ुदावंदी की क़दर करना है।

ख़तरा, ख़तरा, ख़तरा

मैं मुसलमानों के एक जलसे में शरीक हुआ। यह तालीमयाफ़्ता अफ़राद का जलसा था। उनकी तक़रीरों का ख़ुलासा था—हम ख़तरों से घिरे हुए हैं, हम अपने आपको मुहासरे के अंदर (under siege) पाते हैं। हमको दुश्मन की साज़िशों का सामना है, वग़ैरा।

अपने ज़ाती तजुर्बे की बुनियाद पर मैं कह सकता हूँ कि अपनी पूरी लंबी उम्र में मैंने मुसलमानों के लिखने और बोलने वाले तबक़े से यही बातें सुनी हैं। इस मुद्दत में शायद मुझे कोई नहीं मिला, जो पॉज़िटिव थिंकिंग का हामिल हो, जो मुसबत बातें करे, जो इंसानी ख़तरात के बजाय अल्लाह रब्बुल आलमीन की रहमतों को जानता हो, जो लोगों के दरमियान हक़ीक़ी मानों में अल्लाह की मोहब्बत को बिखेरे, जो लोगों के दरमियान अल्लाह की ख़शियत का चर्चा करे, जो लोगों को हक़ीक़ी मानों में जन्नत और आख़िरत का पैग़ाम दे।

मुझे अपनी ज़िंदगी में ऐसे बहुत से लोग मिले, जो पैग़म्बर का तज़किरा करते हुए "रहमतुल्लिल आलमीन" का लफ़्ज़ बोलते थे, मगर मुझे याद नहीं कि मुझे अपनी ज़िंदगी में ऐसा कोई शख़्स मिला हो, जो हक़ीक़ी मानों में रहमतुल्लिल आलमीन को एक मुसबत इनक़िलाबी तसव्वुर के तौर पर जानता हो, जिसने हालात का ऐसा तज्ज़िया (analysis) किया हो कि दुनिया उसको रहमत की दुनिया दिखाई दे, तारीख़ उसको रहमत की तारीख़ नज़र आए, जो लोगों को ख़ौफ़ के बजाय उम्मीद का पैग़ाम दे, जो लोगों के अंदर नफ़रत के बजाय मोहब्बत की चर्चा करे।

मुझे अपनी लंबी उम्र में ऐसे लोग मिले, जो रद्द-ए-अमल (reaction) की सोच में जीने वाले थे, शायद मुझे ऐसा कोई शख़्स

नहीं मिला जो रद्द-ए-अमल की नफ़्सियात से पाक हो, जो ख़ालिस मुसबत नफ़्सियात (positive thinking) में जीने वाला हो। मुझे मनफ़ी बातें करने वाले मिले, लेकिन मुझे मुसबत बातें करने वाला कोई नहीं मिला। मुसबत तर्ज़-ए-फ़िक्र फ़ितरत के निज़ाम के मुताबिक़ है। इसलिए मुसबत तर्ज़-ए-फ़िक्र से ज़िंदगी की तामीर होती है। इसके बरअक्स, मनफ़ी तर्ज़-ए-फ़िक्र (negative thinking) से ज़िंदगी के तमाम मामलात बिगड़ जाते हैं। मुसबत तर्ज़-ए-फ़िक्र ज़िंदगी है, और मनफ़ी तर्ज़-ए-फ़िक्र अबदी हलाकत। मुसबत तर्ज़-ए-फ़िक्र रब्बानी तर्ज़-ए-फ़िक्र है, और मनफ़ी तर्ज़-ए-फ़िक्र ताग़ूती तर्ज़-ए-फ़िक्र।

हदीस और क़ुरान

क़ुरान में वह तमाम हक़ीक़तें बयान की गई हैं जो इंसान की कामयाबी के लिए ज़रूरी हैं। लेकिन उनका बयान ज़्यादातर जनरल अंदाज़ में है, तफ़सीली और मुतअय्यन सूरत में नहीं। इस एतबार से हदीस, मानो क़ुरान की तकमील है। हदीस में क़ुरआन की आम बातों को ज़्यादा वाज़ेह और मुतअय्यन अंदाज़ में बयान किया गया है:

Hadith specifies the general teaching of Quran.

मिसाल के तौर पर क़ुरान की सूरह अल-अहज़ाब में इरशाद हुआ है:

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اذْكُرُوا اللهَ ذِكْرًا كَثِيْرًا

यानी, ऐ ईमान वालो, अल्लाह को बहुत ज़्यादा याद करो(33:41)। यह आयत सिर्फ़ ज़िक्र-ए-कसीर की तालीम देती है, मगर ज़िक्र-ए-कसीर की अमली सूरत क्या है, वह क़ुरान की इस आयत से मालूम नहीं होती। क़ुरान एक किताब है, इसलिए उसमें किसी तालीम को सिर्फ़

उसूली तौर पर बयान किया जा सकता है। किसी तालीम की अमली सूरत को एक किताब में बयान करना मुमकिन नहीं।

इसलिए क़ुरान में बताया गया है कि रसूल तुम्हारे लिए उस्वा हैं (33:21)। उस्वा का मतलब है अमली नमूना (practical model)। चुनाँचे क़ुरान की मज़कूरा तालीम (ज़िक्र-ए-कसीर) का अमली मॉडल हदीस के मुताले से मालूम होता है। इस सिलसिले में हज़रत आयशा की एक रिवायत हमारी रहनुमाई करती है। उस रिवायत के अल्फ़ाज़ यह हैं:

كَانَ النَّبِيُّ صلى الله عليه وسلم يَذْكُرُ اللهَ عَلَى كُلِّ أَحْيَانِهِ

यानी, रसूलुल्लाह ﷺ अल्लाह को हर मौक़े पर याद करते थे।
(सहीह मुसलिम, हदीस नंबर 117)

रसूलुल्लाह ﷺ के इस उस्वा से क़ुरान की मज़कूरा आयत का मफ़हूम वाज़ेह तौर पर मालूम हो जाता है। वह यह कि ज़िक्र-ए-कसीर का मतलब क्या है—यानी वाक़ियात और तजुर्बात को पॉइंट ऑफ़ रेफ़रेंस बना कर अल्लाह को याद करना। वाक़ियात और तजुर्बात आदमी की ज़िंदगी में हर लम्हा पेश आते रहते हैं। इस बिना पर इंसान के लिए यह मौक़ा है कि वह हर लम्हा पेश आने वाले वाक़ियात और तजुर्बात के हवाले से अल्लाह को याद करता रहे। यही वह चीज़ है जिसको क़ुरान में ज़िक्र-ए-कसीर कहा गया है।

इज्तिहाद क्या है?

इब्नुल हमाम अल-हनफ़ी ने इज्तिहाद की तारीफ़ इन अल्फ़ाज़ में की है:

بَذْلُ الطَّاقَةِ مِنَ الْفَقِيهِ فِي تَحْصِيلِ حُكْمٍ
شَرْعِيٍّ عَقْلِيًّا كَانَ أَوْ نَقْلِيًّا قَطْعِيًّا كَانَ أَوْ ظَنِّيًّا

यानी, फ़िक़्ह के स्कॉलर का किसी शरई हुक्म तक पहुँचने के लिए अपनी पूरी कोशिश करना, चाहे वह अक़्ली हो या नक़्ली, यक़ीनी हो या ग़ालिब गुमान पर मबनी।(अल-इज्तिहाद फ़ी मनात अल-हुक्म अश-शरई, बलक़ासिम बिन ज़ाकिर, p. 32)

बज़ाहिर यह तारीफ़ एक वसीअ तारीफ़ है, लेकिन यह ज़्यादा वाज़ेह तारीफ़ नहीं है। इज्तिहाद की अस्ल यह है कि जहाँ पर शरई हुक्म सीधे तौर से लागू न होता हो, वहाँ पर हालात की रिआयत करते हुए शरई उसूलों से इस्तिंबात (infrence) के ज़रिए रास्ता निकाला जाए। अस्ल के एतबार से इज्तिहाद बुनियादी मसाइल में होता है। मगर अमली तौर पर हमारे फ़ुक़हा की ज़्यादा तवज्जोह ग़ैर-बुनियादी मसाइल में इज्तिहाद तक महदूद हो गई। इस वजह से वह आयात व अहादीस से इस क़िस्म का इज्तिहाद करने से ग़ाफ़िल रहे, जिसका असर ज़्यादा वसीअ और दूर-रस होता है।

मसलन क़ुरान की एक आयत है:

يَا قَوْمِ ادْخُلُوا الْأَرْضَ الْمُقَدَّسَةَ الَّتِي كَتَبَ اللَّهُ
لَكُمْ وَلَا تَرْتَدُّوا عَلَى أَدْبَارِكُمْ فَتَنْقَلِبُوا خَاسِرِينَ

यानी, ऐ मेरी क़ौम, उस पाक ज़मीन में दाख़िल हो जाओ जो अल्लाह ने तुम्हारे लिए लिख दी है, और अपनी पीठ की तरफ़ न लौटो वरना नुक़सान में पड़ जाओगे।(5:21)

कुछ लोग इस आयत को हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम के ज़माने के साथ ख़ास मानते हैं। मगर यह बिला-शुब्हा एक जज़्बात पर मबनी इज्तिहाद है, क्योंकि आयत के अल्फ़ाज़ आम हैं तो ख़ास करने की दलील इससे नहीं निकलती। क़ुरान की इस आयत के बारे में मौजूदा

दौर के उलमा सही इज्तेहादी स्पिरिट से महरूम हो गए हैं। उनमें से कुछ उलमा इस हद तक गए हैं कि उन्होंने फ़लस्तीन के मामले में ख़ुदकुश हमलों को जायज़ क़रार दे दिया है। यह सिर्फ़ ग़ुलू नहीं है, बल्कि वह हराम को हलाल क़रार देने के हम-मानी है। यह संगीन ग़लती इसलिए हुई कि उलमा ने इसराईल के मसले को एक मुस्तसना (exception) मसला क़रार दे दिया।

क़ुरान की इस मज़कूरा आयत को मंसूख़ (abrogated) समझना, या इसे हज़रत मूसा के ज़माने से मख़सूस क़रार देना, बिला-शुब्हा एक कमज़ोर तफ़्सीर है, क्योंकि क़ुरान या हदीस में इसकी कोई सही दलील मौजूद नहीं।

इज्तिहाद की ज़रूरत

मौजूदा दौर गैलिलियो (1564-1642) और न्यूटन (1642-1727) से शुरू हुआ है। यह एक नया दौर था, जिसको साइंटिफ़िक दौर कहा जाता है। इस दौर में नए इज्तिहाद दरकार था। जैसा कि हज़रत माज़ बिन जबल की हदीस-ए-इज्तिहाद (सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 3592) से रहनुमाई मिलती है कि नए हालात के मुताबिक़ इज्तिहाद से काम लेना चाहिए। लेकिन मुसलमान इस नए दौर को पहचान न सके। इस ना-वाक़िफ़ियत की बिना पर वह तब्दील शुदा हालात में इज्तिहाद का तरीक़ा इख़्तियार करके अपने अमल की दुरुस्त मंसूबाबंदी भी न कर सके। इसके उलट उन्होंने इस नए ज़माने और नई तब्दीलियों को दीन के ख़िलाफ़ क़रार दे दिया और उनके ग़लबे को ख़त्म करने के लिए पूरी शिद्दत के साथ हथियारबंद जिहाद में मशग़ूल हो गए।

मौजूदा ज़माने में इस्लाम या मुसलमानों का अस्ल मसला यही बे-ख़बरी है। इस ना-वाक़िफ़ियत की बिना पर तमाम मुसलमानों ने यह समझ लिया कि इस्लाम मौजूदा ज़माने में मुख़ालीफ़ीन का निशाना बना हुआ है। हालाँकि अस्ल बात यह थी कि यह दौर हदीस के अल्फ़ाज़ में इस्लाम के सपोर्ट का दौर था।(मुस्नद अहमद, हदीस नंबर 20454) अब ज़रूरत थी कि ताईद-ए-दीन के इस वाक़िए को दरियाफ़्त करके उसको इस्तेमाल किया जाए, लेकिन बे-ख़बरी की वजह से दुनिया भर के मुसलमान इस नए दौर के ख़िलाफ़ नफ़रत और तशद्दुद की राह पर चल पड़े। आज मुसलमानों का अस्ल चैलेंज यह है कि वह इज्तिहाद के ज़रिए अपनी इस बे-ख़बरी का ख़ातमा करें, न कि मफ़रूज़ा दुश्मनों के ख़िलाफ़ नफ़रत और तशद्दुद में अपनी एनर्जी ज़ाए करें।

इस्लाम का एक ही मिशन है, और वह तमाम इंसानों को ख़ालिक़ के मंसूबा-ए-तख़लीक़ से आगाह करना है। यानी ख़ुदा का पैग़ाम ख़ुदा के बंदों तक उनको समझ आने वाली ज़बान में पहुँचाना। क़दीम ज़माने में वक़्ती तौर पर इस मिशन का तरीक़ा-ए-कार (method) जिहाद बिस्सैफ़ बन गया था। इसका सबब यह था कि क़दीम ज़माना मज़हबी जबर (religious persecution) का ज़माना था, जिसको क़ुरान में फ़ित्ना (2:193) कहा गया है। क़दीम ज़माना जाबिराना निज़ाम का ज़माना था, और उन लोगों ने क़ायम कर रखा था जिनको हदीस में मलूक अल-अर्ज़ (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 6519) कहा गया है। ये लोग अपने सियासी मक़ासिद के लिए मज़हब को इस्तेमाल करते थे और इंसानों को किसी नए मज़हब को अपनाने की आज़ादी नहीं थी।

रसूल और असहाब-ए-रसूल की कोशिशों से अब मलूक अल-अर्ज़ ख़त्म हो गए। उनकी जगह जमहूरियत (democracy) का दौर आ गया है। क़दीम ज़माने का जबरी निज़ाम अब ख़त्म हो गया है। यूनाइटेड नेशंस (UNO) के क़ियाम के बाद अब सारी दुनिया

में मुकम्मल आज़ादी का ज़माना आ गया है। अब तआरुफ़-ए-इस्लाम का मिशन बदस्तूर जारी रहेगा, लेकिन उसका तरीक़ा-ए-कार मुकम्मल तौर पर पुरअम्न होगा। अब डिफ़ेंसिव जिहाद की भी ज़रूरत नहीं रही, यह अमल अब ग़ैर-ज़रूरी हो चुका है। क्योंकि जब कोई हमला या जारहियत (आक्रामकता) ही नहीं होगी, तो किस के ख़िलाफ़ जिहाद बिस्सैफ़ होगा।

मौजूदा दौर मुकम्मल तौर पर एक पुरअम्न दौर (peaceful age) है। वह तमाम मक़सद जिनके लिए क़दीम ज़माने में लड़ाई की जाती थी, अब बग़ैर जंग के पुरअम्न तरीक़े से हासिल किए जा सकते हैं। अब सिर्फ़ वही लोग जंग की बात करते हैं जो ज़माने की इस तब्दीली से बे-ख़बर हैं। इस्लाम का अस्ल निशाना यह है कि लोगों को तौहीद और आख़िरत से बाख़बर किया जाए। इस मक़सद को फैलाने के लिए अब कोई भी रुकावट हक़ीक़तन मौजूद नहीं। अब अगर कोई लड़ाई की बात करता है तो उसका मामला "आ बैल मुझे मार" का मिस्दाक़ है।

इज्तिहाद अमलन एक मतरूक (obsolete) सुन्नत बनी हुई है, इसकी वजह यह है कि हमारे उलमा ने ख़ुद-साख़्ता तौर पर इज्तिहाद को एक मुक़द्दस शरई मसला बना दिया है। हालाँकि इज्तिहाद का ताल्लुक़ एक अमली ज़रूरत से है। मसलन जब दुनिया में बहरी-सफ़र (sea voyage) से हवाई सफ़र का दौर शुरू हुआ तो यह इज्तिहाद का मामला है जो कि हज के सफ़र के लिए इख़्तियार किया गया। बदक़िस्मती से यही तरीक़ा दूसरे मामलात में नहीं इख़्तियार किया गया। मौजूदा ज़माने में मुसलमानों के तमाम मामलात इसी लिए ग़ैर-हल-शुदा पड़े हुए हैं। क्योंकि जिस तरह उन्होंने सफ़र-ए-हज के मामले में इज्तिहाद का तरीक़ा इख़्तियार किया, उसी तरह दूसरे मामलों में इज्तिहाद का तरीक़ा इख़्तियार नहीं कर सके।

क्यों है यह आम बे-ख़बरी?

क्यों है यह आम बे-ख़बरी? इसका जवाब ख़ुद क़ुरान व हदीस में पेशगी तौर पर दिया गया है। एक हदीस में क़ुरान के ताल्लुक़ से आया है:

وَخَبَرُ مَا هُوَ كَائِنٌ بَعْدَكُمْ

यानी, क़ुरान में मुस्तक़बिल में पेश आने वाले वाक़िये की ख़बर है।
(मुस्नद अहमद, हदीस नंबर 704)

मसलन क़ुरान में बताया गया है:

سَنُرِيهِمْ آيَاتِنَا فِي الْآفَاقِ وَفِي أَنْفُسِهِمْ حَتَّى يَتَبَيَّنَ لَهُمْ أَنَّهُ الْحَقُّ।

यानी, अनक़रीब हम उनको अपनी निशानियाँ दिखाएँगे अफ़ाक़ में भी और ख़ुद उनके अंदर भी, यहाँ तक कि उन पर ज़ाहिर हो जाएगा कि यही हक़ है।(41:53)

यह आयत वाज़ेह तौर पर उम्मत को मुस्तक़बिल के एतबार से लाइन ऑफ़ एक्शन दे रही थी, यानी ख़ुदा की दरियाफ़्त बज़रीया आयात-ए-काएनात (signs in nature)। मगर हैरत की बात यह है कि किसी ने इसको मौज़ू-ए-बहस बनाया ही नहीं। सारे लोग फ़िक़्ही मसाइल में लगे रहे। रसूल और असहाब-ए-रसूल के बाद के ज़मानों में यह हुआ कि लोग जौक़-दर-जौक़ इस्लाम में दाख़िल होने लगे। उन्होंने सारी तवज्जोह मसाइल-ए-अहकाम को समझने में लगा दी। पूरी उम्मत इसी में मसरूफ़ हो गई और फ़िक़्ह अमलन सबसे नुमायाँ हैसियत इख़्तियार कर गई। क़ुरान का मुताला यूनिवर्सल नुक़्ता-ए-नज़र से करने के बजाय फ़िक़्ही मसाइल के एतबार से किया जाने लगा। सदियों तक यही तरीक़ा जारी रहा।

बाद में चल कर इसमें एक नई बात शामिल हो गई—मुक़द्दस अकाबिर का नज़रिया। यानी अकाबिर को दीन के हम-मानी समझ लेना। अकाबिर ने क़ुरान व सुन्नत के हवाले से जो कह दिया वह फाइनल है, उससे अलग राय क़ायम करना मतलूब अमल नहीं। अगरचे बाद के ज़माने में कुछ लोगों ने अकाबिर के नुक्ता-ए-नज़र से ऊपर उठ कर क़ुरान का मुताला करना चाहा और बदले हुए ज़माने के एतबार से क़ुरान को समझने की कोशिश की तो आम तौर पर यह ख़याल किया गया कि यह अस्लाफ़ पर तनक़ीद है, और अस्लाफ़ पर तनक़ीद को दीन पर तनक़ीद या उसमें तब्दीली के हम-मानी समझ लिया गया।

हालाँकि रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया था:

نَضَّرَ اللهُ امْرَأً سَمِعَ مَقَالَتِي فَوَعَاهَا وَحَفِظَهَا وَبَلَّغَهَا،
فَرُبَّ حَامِلِ فِقْهٍ إِلَى مَنْ هُوَ أَفْقَهُ مِنْهُ مِنْهُ

यानी, अल्लाह उस शख़्स को तरो-ताज़ा रखे जो मेरी बात सुने, उसे याद रखे, महफ़ूज़ करे और दूसरों तक पहुँचाए। हो सकता है कि कोई समझ रखने वाला मेरी बात उस शख़्स तक पहुँचाए जो उससे ज़्यादा गहरी समझ रखता हो।(सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 2658)

ज़्यादा गहरी समझ रखने का मतलब यह है कि वह दीन को ज़्यादा गहराई के साथ और अपने ज़माने की ज़रूरतों के मुताबिक़ बेहतर तौर पर समझेगा। इस हदीस से मालूम होता है कि दीन को समझने के मामले में पुरानी सोच पर जमे रहना एक नापसंद रवैया है। मुसलमान तारीख़ का मुताला बताता है कि क़दीम ज़माने में "अना क़ाइम-उज़-ज़मान" और जदीद दौर में "मुजद्दिद-ए-कामिल" जैसे अल्फ़ाज़ तो बोले गए, लेकिन इन अल्फ़ाज़ का नमूना हक़ीक़ी तौर पर पेश न किया जा सका। इसकी वजह शख़्सी तक़द्दुस (divine personality) के नज़रिए का पैदा हो जाना था। अब वक़्त आ गया है कि हम अपने पिछले अमल

का नए सिरे से जायज़ा करें, और जो काम रसूल और असहाब-ए-रसूल के ज़माने में शुरू हुआ मगर दरमियानी ज़माने में जा कर रुक गया था, उसको दुबारा शुरू करें—यानी क़ुरान की आयतों का दुबारा यूनिवर्सल या इज्तेहादी नुक्ता-ए-नज़र से मुताला करें।

हक़ीक़त यह है कि ज़िंदगी का निज़ाम इज्तिहाद के बग़ैर नहीं चल सकता, और इज्तिहाद इख़्तिलाफ़-ए-राय के बग़ैर मुमकिन नहीं। जहाँ इख़्तिलाफ़-ए-राय न हो वहाँ जुमूद होगा, और ज़ेहनी जुमूद दर-हक़ीक़त ज़ेहनी मौत है, जिसके बाद हक़ीक़ी तरक़्क़ी का कोई इमकान बाक़ी नहीं रहता। मुक़द्दस अकाबिर का नज़रिया इंसान को इख़्तिलाफ़-ए-राय से रोक देता है, हालाँकि यही इख़्तिलाफ़-ए-राय इज्तिहाद का दरवाज़ा है, जो इंसान के अंदर यूनिवर्सल अप्रोच पैदा करता है।

इख़्तिलाफ़-ए-राय का इज़हार हमेशा तनक़ीद (criticism) की सूरत में होता है। मगर तनक़ीद, चाहे वह किसी शख़्स के हवाले से की गई हो, वह अपनी हक़ीक़त के एतबार से मुताला की एक सूरत होती है। तनक़ीद का अस्ल मक़सद किसी मौज़ू पर खुले तबादला-ए-ख़याल (open discussion) का आग़ाज़ होता है। तन्क़ीद का मक़सद ये है कि मुख़्तलिफ़ ज़ेहन इमानदारी से अपने नज़रिए को बयान करें और फिर दूसरे लोग भी इमानदारी के साथ उस पर अपने ख़यालात का इज़हार करें। इस तरह का आज़ादाना तबादला-ए-ख़याल इज्तिहाद का बुनियादी तक़ाज़ा है।

आज ज़रूरत है कि क़ुरान को उसकी अबदी हक़ीक़त के एतबार से पढ़ने का तरीक़ा इख़्तियार किया जाए, ताकि हमें उन तमाम मामलों में रब्बानी रहनुमाई हासिल हो सके जिसकी मौजूदा दौर में सबसे ज़्यादा ज़रूरत महसूस की जा रही है।

कसावत क्या है?

क़ुरान की सूरा अल-हदीद में अहल-ए-ईमान को नसीहत करते हुए इरशाद हुआ है:

أَلَمْ يَأْنِ لِلَّذِينَ آمَنُوا أَنْ تَخْشَعَ قُلُوبُهُمْ لِذِكْرِ اللهِ وَما
نَزَلَ مِنَ الْحَقِّ وَلا يَكُونُوا كَالَّذِينَ أُوتُوا الْكِتابَ مِنْ قَبْلُ
فَطالَ عَلَيْهِمُ الْأَمَدُ فَقَسَتْ قُلُوبُهُمْ وَكَثِيرٌ مِنْهُمْ فاسِقُونَ

यानी, क्या ईमान वालों के लिए वह वक़्त नहीं आया कि उनके दिल अल्लाह की नसीहत के आगे झुक जाएँ। और उस हक़ के आगे जो नाज़िल हो चुका है। और वे उन लोगों की तरह न हो जाएँ जिनको पहले किताब दी गई थी, फिर उन पर लंबी मुद्दत गुज़र गई तो उनके दिल सख़्त हो गए। और उनमें से अक्सर लोग नाफ़रमान हैं।(57:16)

क़ुरान की इस आयत में किसी उम्मत की उस हालत को बयान किया गया है, जो कि उम्मत की कई नस्लें गुज़रने पर बाद के लोगों में लाज़िमन पैदा होती है। इस हालत का दूसरा नाम ज़वाल (degeneration) है। किसी उम्मत पर जब ज़वाल आता है तो लोगों के दिल सख़्त हो जाते हैं। दिल की इस सख़्ती (कसावत) को क़ुरान में सूरा अल-बक़रा में पत्थर की हालत से ताबीर किया गया है।(2:74)

कसावत क्या है। वह दरअसल दीनी एतिबार से अफ़राद-ए-उम्मत का बे-रूह (spritless) हो जाना है। बाद की नस्लों में जब ज़वाल की यह हालत आती है तो ऐसा नहीं होता कि वे दीन से अलाहिदगी का ऐलान कर दें, बल्कि सिर्फ़ यह होता है कि उनकी दीनदारी महज़ ज़ाहिरी फ़ॉर्म तक महदूद हो जाती है। जहाँ तक दाख़िली रूह का ताल्लुक़ है, वह उनके अंदर मौजूद नहीं होती। उम्मत की बाद की नस्लों में ज़वाल

की यह हालत फ़ितरत के एक क़ानून के तहत ज़ुहूर में आती है। ज़वाल के इस वाक़िए का पेश आना कोई ग़ैर-फ़ितरी बात नहीं है। असल बुराई यह है कि जब ज़वाल की यह हालत पेश आए तो उस वक़्त उसकी इस्लाह की सही तदबीर न की जाए। बरवक़्त सही तदबीर से उम्मत दोबारा अपनी अस्ल मतलूब हालत पर क़ायम हो सकती है, लेकिन अगर बरवक़्त सही तदबीर न की जाए तो उसके बाद कसावत की हालत बाक़ी रहती है। जो आख़िरकार 'फ़िस्क़' तक पहुँच जाती है, यानी 'पॉइंट ऑफ़ नो रिटर्न' तक।

अमानी और फ़िक्री ज़वाल

क़ुरान में अहल-ए-किताब क़ौमों की ज़वाल-याफ़्ता रविश का तफ़सील से ज़िक्र आया है। इनमें से एक रवैया वह है जिसको इंसानी ज़बान में ख़ुश-ख़याली कहा जाता है। मसलन यह कि हम अल्लाह के बेटे और उसके महबूब हैं।(अल-माइदा, 5:18) यहूदी और नसरानी पैदा होना ही हिदायत-याफ़्ता होना है।(अल-बक़रा, 2:135) हमारा कोई आदमी जहन्नम में न जाएगा। और अगर गया भी तो उसका जाना सिर्फ़ चंद रोज़ के लिए होगा।(अल-बक़रा, 2:80) क़ुरान ने उनकी इन ख़ुश-ख़यालियों को 'अमानी' (अल-बक़रा, 2:111) कहा है। इरशाद हुआ कि इस किस्म के अमानी चाहे यहूद क़ायम करें या मुसलमान क़ायम करें, ख़ुदा के नज़दीक इनकी कोई हैसियत नहीं। ख़ुदा का अबदी क़ानून तो यह है कि जो शख़्स जैसा करे, उसके मुताबिक़ उसको बदला दिया जाए।(अन-निसा, 4:123)

अमानी के मानी हैं बे-बुनियाद उम्मीदें (expectations)। अब्दुल्लाह बिन अब्बास, मुजाहिद और फ़र्रा ने कहा है कि इससे मुराद मनगढ़ंत बातें

और बे-बुनियाद क़िस्से, जिन्हें यहूदी आलिमों और बुज़ुर्गों ने गढ़ा था और जो बाद में पूरी क़ौम में फैल गए। यहूदी क़ौम की ख़ूबियों को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बयान किया जाता था। इसी तरह यहूदियत से जुड़ी छोटी-छोटी चीज़ों को भी बहुत मुक़द्दस और बरकत वाली मानकर उनके बारे में तरह-तरह की कहानियाँ कसरत से उनके दरमियान फैली हुई थीं। पूरी की पूरी क़ौम हक़ीक़ी अमल से ग़ाफ़िल थी और इन्हि मनगढ़ंत रिवायात और बनावटी क़िस्से-कहानियों पर जी रही थी।

ठीक यही हाल आज मुसलमानों का हो रहा है। किताबुल्लाह के बजाय अमलन 'किताबुल-अमानी', यानी ख़ुशफ़हमियों और उम्मीदों पर मबनी बातें, उनके दीन की बुनियाद बनी हुई है। फ़ज़ाइल-ए-अमाल की बे-असल रिवायात और बुज़ुर्गों के कश्फ़-ओ-करामात की फ़र्ज़ी दास्तानें बेशुमार तादाद में क़ौम के अंदर फैला दी गई हैं और मुसलमान अवाम की बड़ी तादाद इन्हीं ख़ुश-ख़यालियों के सहारे जी रही है।

मौजूदा ज़माने में मुसलमानों के दरमियान बहुत सी इस्लाही तहरीकें उठीं, मगर वह सब की सब अपने निशाने को हासिल करने में नाकाम रहीं। इस नाकामी का सबब यह है कि मौजूदा ज़माने के मुसलमान रहनुमाओं ने इस भ्रम के साथ अपना काम शुरू किया कि यहाँ एक 'ख़ैर-उम्मत' मौजूद है और उसको ज़िंदा करने के लिए सिर्फ़ यह करना है कि उसके अंदर जोश-ओ-वलवला पैदा कर दिया जाए। इक़बाल का यह शेर इसी ज़हन की नुमाइंदगी करता है:

'नवा रा तलख़ तर मि ज़न चो ज़ौक़-ए-नग़मा कम याबी
हुदी रा तेज़ तर मि ख़्वान चो महमिल रा गरां बिनी'

यानी, अगर जज़्बा और शौक़ कम पड़ जाए तो अपनी आवाज़ में शिद्दत पैदा कर, और जब सफ़र बोझ लगने लगे तो हौसला बढ़ाने वाले तराने को बुलंद आवाज़ में गा।

मगर उम्मत को फिर से उठाने (revive) का यह सही तरीक़ा नहीं। उम्मत को फिर से उठाने का मतलब यह है कि उम्मत के अफ़राद को सही और मुसबत (positive) रास्ते पर डाला जाए, उनको 'ख़ुशफ़हमियों' से बाहर निकाला जाए। क़ानून-ए-फ़ितरत के मुताबिक़ इस दुनिया में कोई भी तामीरी मिशन शोर-शराबे वाली सियासत से शुरू नहीं होता। तामीरी मिशन हमेशा अफ़राद-साज़ी से शुरू होता है। इहया-ए-उम्मत (revival of ummah) का सही तरीक़ा यह है कि सबसे पहले इस बात को तस्लीम किया जाए कि मौजूदा ज़माने के मुसलमान ख़ैर-उम्मत की सतह पर नहीं हैं, बल्कि वह एक ज़वाल-याफ़्ता उम्मत (degenerated community) हैं। रसूलुल्लाह ﷺ के ज़माने के यहूद-ओ-नसारा कौन थे। वह दरअसल दौर-ए-क़दीम की ज़वाल-याफ़्ता उम्मत थे। क़ुरान में उनकी जो हालत बयान की गई है, वह उम्मत-ए-मुस्लिमा के मौजूदा दौर-ए-ज़वाल के लिए एक आईना है। यानी उम्मत-ए-मुस्लिमा को अपनी इस्लाह के लिए वही तरीक़ा इख़्तियार करना चाहिए, जो क़ुरान में अहल-ए-किताब की इस्लाह के लिए बयान किए गए हैं।

इसका मतलब यह है कि बाद के मुसलमान रहनुमाओं के लिए करने का काम यह नहीं है कि वो उम्मत के अफ़राद को ख़ैर उम्मत फ़र्ज़ करके काम का आग़ाज़ करें, बल्कि वो इस्लाह से पहले इस हक़ीक़त को तस्लीम करें कि यह उम्मत ज़वाल के उस मरहले में पहुंच चुकी है जहां यहूद-ओ-नसारा पहुंचे थे। इस बिना पर उनकी इस्लाह के लिए अमलन वही तरीका कार आमद हो सकता है जो क़ुरान में यहूद-ओ-नसारा की इस्लाह के लिए बयान किए गए हैं। और इन तमाम बातों का ख़ुलासा सूरा अल-हदीद (57:16-17) में इस तरह बताया गया है कि पहले अफ़राद-ए-उम्मत के शऊर को बेदार करना और उसके बाद उसकी अमली इस्लाह करना।

कश्मीर का ख़्वाब

एक मुसलमान नौजवान अगस्त 2008 में कश्मीर गए। वहाँ वे तीन हफ़्ते रहे। उनकी आदत है कि वे रोज़ाना अपनी डायरी लिखते हैं। वे कश्मीर से वापस आए तो उन्होंने मुझको अपनी डायरी दिखाई। उनकी इस डायरी का एक इंदिराज यह था:

> "4 अगस्त 2008 की एक रात को मेरा क़याम इदारा 'अपना घर' में था। वहाँ इदारे के एक तालिब-ए-इल्म जावेद अहमद (19 साल) भी मौजूद थे। सुबह को मैं बेदार हुआ तो जावेद अहमद ने माहनामा 'अल-रिसाला' से मुताल्लिक़ अपना एक ख़्वाब बयान किया, जो उन्हीं के अल्फ़ाज़ में इस तरह था: 'मैंने देखा कि एक बूढ़ा शख़्स है। उसके चेहरे पर हल्की हल्की सफ़ेद दाढ़ी है। वह अनपढ़ है। वह चीख़-चीख़ कर कह रहा है — मुझे अल-रिसाला का मेंबर बनाओ, मुझे अल-रिसाला का मेंबर बनाओ।''

इस ख़्वाब में मज़कूरा बूढ़ा आदमी गोया कि कश्मीर की रूह है। कश्मीर की रूह चीख़-चीख़ कर कह रही है कि जो मनफ़ी अफ़कार मेरे दरमियान फैलाए जा रहे हैं, उनसे मैं बेज़ार हूँ, इनको बंद करो। मेरे दरमियान 'अल-रिसाला' को फैलाओ, मेरे दरमियान 'अल-रिसाला' वाले मुसबत अफ़कार को आम करो।

कश्मीर में अक्टूबर 1989 में मुतशद्दिदाना जिहाद का आग़ाज़ हुआ। यह सिलसिला मुख़्तलिफ़ सूरतों में, यह मज़मून लिखे जाने तक (मार्च 2012) जारी है। इस नाम-निहाद जिहाद के दौरान कश्मीर में जान-ओ-माल का बे-हिसाब नुक़सान हुआ है। इस ख़ुद-साख़्ता जिहाद ने अहल-ए-कश्मीर को तबाही के सिवा और कुछ नहीं दिया।

अब कश्मीर की सलामती की सिर्फ़ एक सूरत है, और वह यह है कि कश्मीर में उन ख़यालात को ज़्यादा से ज़्यादा फैलाया जाए जिसका पैग़ाम माहनामा 'अल-रिसाला' में मुसलसल तौर पर दिया जा रहा है। इसी में अहल-ए-कश्मीर के लिए ज़िंदगी है। इसके सिवा जो कुछ है, वह मौत और तबाही के सिवा कुछ और नहीं। नाम-निहाद कश्मीरी तहरीक से कुछ लीडरों को फ़ायदा हो सकता है, लेकिन ख़ुद कश्मीर या कश्मीरी अवाम का इसमें कुछ फ़ायदा नहीं— अब आख़िरी वक़्त आ गया है कि इस मामले में नज़र-ए-सानी की जाए और जज़्बातियत को छोड़ कर हक़ीक़त-पसंदी का तरीक़ा इख़्तियार किया जाए। (अल-रिसाला मार्च 2012)

तशद्दुद की तज़ईन

तशद्दुद (violence) कामिल मानों में एक तबाहकुन अमल है। पूरी तारीख़ बताती है कि तशद्दुद के ज़रिए कभी भी किसी फ़र्द या गिरोह को कोई मुसबत कामयाबी हासिल नहीं हुई। जब भी किसी फ़र्द या गिरोह ने तशद्दुद का तरीक़ा इख़्तियार किया तो उसके हिस्से में सिर्फ़ तबाही आई, न कि हक़ीक़ी मानों में कोई तामीर। इस के बावजूद क्यों ऐसा है कि लोग बार-बार तशद्दुद का फ़ेल करते हैं, लोग बार-बार मुतशद्दिदाना कार्रवाई करते हैं। इसका सबब शैतानी तज़ईन यानि ख़ूबसूरत करके दिखाना (beautification) है। क़ुरान में बताया गया है कि शैतान का ख़ास तरीक़ा यह है कि वह एक ग़लत काम को ख़ूबसूरत अल्फ़ाज़ में पेश करता है, वह फ़साद को इस्लाह का नाम देता है।(15:39) इस तरह शैतान लोगों के ज़हन को मुतअस्सिर करता है। वह लोगों को इस फ़र्ज़ी यक़ीन में मुब्तला करता है कि जो कुछ तुम करने जा रहे हो, वह तशद्दुद नहीं है, बल्कि वह मुक़द्दस जिहाद है। वह शहादत का रास्ता है जो

तुमको सीधे जन्नत तक पहुँचाने वाला है। इस तरह शैतानी तज़ईन का शिकार होकर लोग तशद्दुद का अमल करने लगते हैं। वह एक ग़लत काम कर रहे होते हैं, लेकिन शैतान उनको इस फ़रेब में मुब्तला रखता है कि यह एक अच्छा काम है।

इस शैतानी तज़ईन से बचने का सिर्फ़ एक ही रास्ता है, वह यह कि अपने अमल को नतीजे के एतिबार से जाँचा जाए। जो मुतशद्दिदाना अमल तबाही के अंजाम तक पहुँच रहा हो, जिससे मिले हुए मौके बर्बाद होते हों, उसके बारे में यह यक़ीन कर लिया जाए कि वह शैतान की तज़ईन का नतीजा है और फिर तौबा-ओ-इस्तिग़फ़ार करके उस से दूरी इख़्तियार कर ली जाए।(अल-आराफ़, 7:201) हक़ीक़त यह है कि तशद्दुद अपने आप में एक नामतलूब फ़ेल है। तशद्दुद कभी कोई इस्लाह पैदा नहीं करता, वह सिर्फ़ मज़ीद नुक़सान का सबब बनता है। तशद्दुद एक हैवानी फ़ेल है, वह कोई इंसानी फ़ेल नहीं। तशद्दुद हमेशा नफ़रत और अदावत से पैदा होता है। अपने अंदर से नफ़रत और अदावत की सोच को ख़त्म कर दीजिए। इस के बाद कभी शैतान आपके ऊपर क़ाबू न पा सकेगा। तशद्दुद जैसे फ़ेल से आप कामिल तौर पर महफ़ूज़ हो जाएँगे।

इंसान, आला इंसान

मिस्टर मनोहर पार्रिकर गोवा के चीफ मिनिस्टर थे। उनकी पैदाइश 31 दिसंबर 1955 को गोवा में हुई, और 17 मार्च 2019 को चीफ मिनिस्टर रहते हुए कैंसर से उनकी वफ़ात हो गई। वह चार बार गोवा के चीफ मिनिस्टर रहे, और एक मर्तबा डीफ़ेंस मिनिस्टर भी रहे। वह इंडिया के

एक मक़बूल सियासतदां थे। उनकी वफ़ात पर IIT मुंबई के ऐक्टिंग डायरेक्टर प्रोफेसर ए.के. सुरेश ने कहा कि उनके जैसा आदमी लाखों में एक होता है:

On Monday evening, a day after the former chief minister's demise, IIT-Bombay held a condolence event in his honour. The acting director, Professor AK Suresh, described the loss as not only a "void in the political arena, but also one in humanity". "People like him are one in a million, and the values that IIT aims to instill within its students are those that he imbibed within himself, and in doing so he has made IIT proud." said Suresh. (The Times of India, New Delhi, Mar 19, 2019, p. 11)

वो बाअख़लाक़ और अमानतदार (honest) आदमी थे। सियासत में रहते हुए उन्होंने बहुत से अच्छे काम किए। उनके बारे में बहुत से वाक़ियात बयान किए जाते हैं, जो उनकी ईमानदारी और ज़िम्मेदारी के सबूत हैं, और जिससे उनकी शख़्सियत का अंदाज़ा होता है।

मसलन एक मर्तबा एक नाकेबंदी पर देर रात को पुलिस वाले ने एक गाड़ी को रोका और पूछा कि इतनी रात को क्या कर रहे हो। यह कार वाले आदमी गोवा के सीएम मिस्टर पार्रिकर थे, जो बग़ैर रैड बत्ती की गाड़ी में सिक्योरिटी के बग़ैर सामने वाली सीट पर बैठकर जा रहे थे, जिस वजह से पुलिस वाला उनको पहचान नहीं पाया।

एक मर्तबा का वाक़िया है, वह पणजी (panaji) के एक 5 स्टार होटल में सादा अंदाज़ में गए। वहाँ मौजूद सिक्योरिटी गार्ड उन्हें पहचान नहीं पाया, और रूटीन के मुताबिक़ उनको एक आम आदमी की तरह उनकी जाँच करके उन्हें अंदर जाने दिया। उन्होंने बग़ैर किसी पस-ओ-

पेश के रूल को फॉलो किया। बाद में जब वॉचमैन को हक़ीक़त मालूम हुई तो उसको लगा कि अब उसकी नौकरी चली जाएगी, मगर मिस्टर पार्रिकर ने उसकी हिम्मत अफ़ज़ाई की, और कहा कि ऐसा कुछ नहीं होगा।

एक मराठी न्यूज़ वेबसाइट Puneri Speaks ने 17 मार्च 2019 को उन्हें याद करते हुए हसब-ए-ज़ेल बातें लिखीं है:

> "मिस्टर मनोहर पार्रिकर हमेशा अपने स्कूटर पर मंत्रालय जाते थे। एक सादा ज़िंदगी गुज़ारने वाले मनोहर पार्रिकर की यही पहचान थी। अपनी स्कूटर पर हेलमेट पहनकर वे पाणाजी में चक्कर लगाते हुए मंत्रालय पहुंचा करते थे। बाक़ी चीफ़ मिनिस्टर की तरह कभी उनमें दिखावा नहीं था। आला तालीम-ए-याफ़ता मनोहर पार्रिकर को सादा तर्ज़-ए-ज़िंदगी पसंद था।इसी लिए वो मशहूर भी थे। अचानक किसी आम होटल में खाना खाने चले जाना, आम लोगों की तरह स्कूटर पर घूमना उनके लिए मामूल था। एक मर्तबा का वाक़िया है, मनोहर पार्रिकर हमेशा की तरह सुबह-सुबह अपने स्कूटर पर जा रहे थे। रास्ते में ट्रैफ़िक की भीड़ कम थी। एक ट्रैफ़िक सिगनल पर उनके पीछे एक लड़का इंतिहाई तेज़ी से ऑडी कार चलाता हुआ आया, उसको यह लगा कि मनोहर पार्रिकर सिग्नल पर नहीं रुकेंगे। मगर क़ानून के पाबंद पार्रिकर सिग्नल पर रुक गए। अचानक रुकी स्कूटर की वजह से ऑडी ड्राइवर घबरा गया। ज़ोर से ब्रेक लगाते हुए बड़ी मुश्किल से गाड़ी रोकी, और इंतिहाई ग़ुस्से के साथ मनोहर पार्रिकर से बोला:कहाँ बीच रास्ते में रुक गया है, एक तरफ़ हो जा, तुझे मालूम नहीं मैं कौन हूँ, मेरा बाप DSP है। मगर पुर-सुकून और सादा-मिज़ाज मनोहर पार्रिकर ने अपना हेलमेट उतारते

हुए उस लड़के से कहा: 'तो फिर अपने बाप से जाकर कहना कि तुझे चीफ़ मिनिस्टर मिले थे। और सुनो, गाड़ी आहिस्ता चलाया करो। ऐसा मश्वरा देते हुए उन्होंने नरमी से जवाब दिया। हालाँकि वो ख़ुद चीफ़ मिनिस्टर थे, वो अगर चाहते तो जवाब में शिद्दत का तरीक़ा इख़्तियार कर सकते थे। मगर उन्होंने नरम अंदाज़ में उस लड़के को समझाया।"

ऐसी ही छोटी-छोटी बातें इंसान को आला इंसान बनाती हैं। मिस्टर पार्रिकर की ज़िंदगी ये सबक़ देती है कि आदमी अगर चाहे तो उसके लिए हर जगह अच्छा इंसान बनने का मौक़ा मौजूद है। शर्त सिर्फ यह है कि वह अपने आपको मुकम्मल तौर पर घमंड की नफ़सियात से बचाए।

(डॉ. फरीदा खानम)

तस्बीह-ए-फ़ातिमा

एक मर्तबा अमेरिका के सफ़र में मैंने डॉक्टर वकार आलम की अहलिया, मिस नुसरत फ़ातिमा को एक नसीहत की । मैंने कहा कि आपको अमेरिका में दूसरों की तरह तनहाई (loneliness) का एहसास होता होगा। मैंने कहा कि आप अगर तस्बीह-ए- फ़ातिमा की स्पिरिट को अपने अंदर शामिल कर लें तो आपका घर फ़रिश्तों से भरा रहेगा। मैंने कहा कि तस्बीह-ए- फ़ातिमा कोई पुर-असरार चीज़ नहीं। तस्बीह-ए-फ़ातिमा का मतलब है, फरिश्तों को अपना मददगार बनाना।

तस्बीह-ए-फ़ातिमा क्या है। रिवायतों में आता है कि एक मर्तबा हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा रसूलुल्लाह ﷺ के पास आईं ताकि वह आपसे घर के लिए एक ख़ादिम माँगें। मगर आपने अपनी साहिबज़ादी

हज़रत फ़ातिमा को ख़ादिम देने के बजाय यह तस्बीह सिखाई। आपने फ़रमाया कि तुम 33 बार कहो "सुब्हान अल्लाह, सुब्हान अल्लाह।" फिर 33 बार कहो "अलहम्दुलिल्लाह, अलहम्दुलिल्लाह।" फिर 34 बार कहो "अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर।" फिर आपने फ़रमाया कि यह तुम्हारे लिए उस चीज़ से बेहतर है जो तुमने माँगा है।(सहीह अल-बुखारी, हदीस नंबर 5361)

यह आम तौर पर तस्बीह-ए-फ़ातिमा के नाम से मशहूर है क्योंकि रसूलुल्लाह ﷺ ने हज़रत फ़ातिमा को इसकी तलक़ीन फ़रमाई थी। लेकिन ग़ौर कीजिए तो मालूम होगा कि आपने हज़रत फ़ातिमा के वास्ते से उम्मत की तमाम ख़वातीन को ज़िक्र का यह क़ीमती तोहफ़ा अता फ़रमाया है। बज़ाहिर में वह तस्बीह-ए-फ़ातिमा है मगर हक़ीक़त के एतबार से वह तस्बीह-ए-ख़वातीन है।

असल यह है कि फ़ितरी तौर पर औरतों का एक ख़ास मिज़ाज है। इस मिज़ाज की वजह से अक्सर ऐसा होता है कि औरतें जब इकट्ठा होती हैं तो वह फौरन एक-दूसरे की बातों का ग़ैर-ज़रूरी चर्चा करने में मसरूफ़ हो जाती हैं। किसी न किसी के बारे में लायानी बातें उनका मौज़ू-ए-गुफ़्तगु बन जाती हैं। यह औरतों की एक आम कमज़ोरी है जिससे बहुत कम औरतें अपने को महफ़ूज़ कर पाती हैं।

मज़कूरा तस्बीह औरतों को इस गुनाह से बचाने की एक तदबीर है। रसूलुल्लाह ﷺ ने इस तरह ख़वातीन को एक अच्छी मशग़ूलियत दे दी है जिसमें अपने आपको मसरूफ़ करके वह सवाब भी हासिल करें और आख़िरत के नुकसान से भी बच जाएँ।

ख़ास तौर पर ज़्यादा उम्र की औरतों के लिए यह और भी ज़्यादा अहम है। एक औरत की उम्र जब बढ़ती है तो उसके बाद उसकी अमली मसरूफ़ियत उसी निस्बत से कम हो जाती है। उसके लिए अपने ख़ाली

वक्त का बेहतरीन मसरफ़ यह है कि वह दूसरों के बेफ़ाइदा तज़किरा में अपना वक्त ज़ाया न करे, बल्कि तस्बीह की सूरत में ख़ुदा का ज़िक्र करने लगे। इसके नतीजे में यह होगा कि दुनिया में उसको क़ल्बी सुकून हासिल होगा और आख़िरत में जन्नत का अबदी आराम।

ज़िक्र-ए-जारि

सूफ़ियों के यहाँ ख़ुदा के लिए ज़िक्र-ए-जारि का तसव्वुर है, यानीमुस्तक़िल तौर पर अल्लाह को याद करते रहना। ज़िक्र-ए-जारि का तसव्वुर बजा-ए-ख़ुद सही है, मगर सूफ़िया ने इसे ज़र्ब-ए-जारि (यानी किसी नाम या वाक्य को लगातार इस तरह ज़ोर और झटके के साथ पढ़ना कि उसकी चोट दिल पर महसूस हो।) के मानी में ले लिया है, यह ज़िक्र-ए-जारि की ग़लत ताबीर है।

ज़िक्र-ए-जारि लफ़्ज़ी तौर पर मतलूब नहीं, बल्कि उसका मानी मतलूब है। इसका मतलब यह है कि ख़ुदा की मारिफ़त आदमी के ज़ेहन में इतना ज़्यादा समा जाए कि उसको हमेशा ख़ुदा याद आता रहे। हर वाक़ये, हर लम्हे के हवाले से उसके लिए हमेशा ख़ुदावंद ज़ुलजलाल की याद ताज़ा होती रहे।

इस दुनिया में जो कुछ है, वह सब ख़ुदा का इनाम है। ज़र्रे से लेकर आफ़ताब तक हर चीज़ बराह-ए-रास्त ख़ुदा का यक-तरफ़ा अतिय्या है। जब भी आप कोई चीज़ देखते हैं, किसी चीज़ का तजुर्बा करते हैं तो वह ख़ुदा के इनाम का एक तजुर्बा होता है। इनाम के इस तजुर्बे में देने वाले का एतराफ़ करते रहना, यही ज़िक्र-ए-जारि है।

इल्मी उस्लूब, अकैडमिक उस्लूब

इल्म की दुनिया में दो मुख़्तलिफ़ इस्तिलाहें (terms) इस्तेमाल होते हैं इल्मी उस्लूब और अकैडमिक उस्लूब। इल्मी उस्लूब और अकैडमिक उस्लूब दोनों हम-मानी अलफ़ाज़ नहीं हैं। दोनों अल्फाज़ों का मतलब तक़रीबन एक जैसे होने के बावजूद लागू होने के एतबार से दोनों बुनियादी तौर पर एक-दूसरे से मुख़्तलिफ़ हैं। इलमी उस्लूब मदारिस की इस्तिलाह है, जो उलमा के दरमियान इस्तिमाल होती है। इसके मुक़ाबले में अकैडमिक उस्लूब एक ग़ैर मज़हबी इस्तिलाह है, जो सेक्युलर आलिमों के दरमियान इस्तिमाल होती है। इन दोनों इस्तिलाहों को एक समझने का नतीजा यह होगा कि आदमी इस मामले में कन्फ्यूज़न का शिकार हो जाएगा। इलमी हलक़ों में ऐसा आदमी माइनस मार्किंग (minus marking) का मुस्तहिक़ समझा जाएगा।

अकैडमिक उस्लूब की एक मिसाल यह है कि इटली के साइंटिस्ट गैलीलियो गैलीली (1564-1642 ई.) से पहले यह समझा जाता था कि ज़मीन मर्कज़ में है और सूरज उसके गिर्द घूम रहा है। मसीही आलिमों के मुताबिक़, यह एक मुस्लिमा हक़ीक़त (accepted fact) बन चुका था। लेकिन सेक्युलर लोगों ने इसको तस्लीम नहीं किया, और गैलीलियो की तहक़ीक़ से यह साबित हुआ कि हक़ीक़त उसके बरअक्स है। चुनांचे सारी दुनिया के अह्ले-इल्म ने इस तहक़ीक़ को क़बूल कर लिया, और आज इस मौज़ू पर कोई इख़्तिलाफ़ नहीं। चुनाँचे साइंसी मैदान में फ़्री इन्क्वायरी, यानी आज़ादाना तहक़ीक़ और जाँच-पड़ताल का दरवाज़ा खुला हुआ है। दूसरा वाक़िया यह है कि पैग़ंबर इब्राहीम ने चार हज़ार साल पहले ये कहा था:

فَإِنَّ اللهَ يَأْتِي بِالشَّمْسِ مِنَ الْمَشْرِقِ فَأْتِ
بِهَا مِنَ الْمَغْرِبِ فَبُهِتَ الَّذِي كَفَرَ ||

यानी, अल्लाह सूरज को पूरब से निकालता है, तुम उसको पश्चिम से निकाल दो। तब वो मुनकिर हैरान रह गया।(2:258)

हज़रत इब्राहीम का यह बयान किसी इंसानी तहक़ीक़ पर क़ायम ना था, बल्कि वो ख़ुदाई ऐलान पर क़ायम था। यह बयान हमेशा इसी तरह क़ायम रहेगा। इसमें कभी कोई तबदीली आने वाली नहीं। यह इल्मी उस्लूब की एक मिसाल है।

इस्लामी बातों को समझने और साबित करने का तरीक़ा इल्मी अंदाज़ पर क़ायम होता है। मसलन आप कहें कि क़ुरान क़तई-उद-दलालत, यानी जिसका मतलब पूरी तरह साफ़ है, तो इसके हक़ में ख़ुद क़ुरान से दलील देना काफ़ी होगा। इस मामले में आपको उसकी ज़रूरत नहीं होगी कि आप क़ुरान के बाहर से इसके लिए कोई अलाहिदा दलील लाएँ तब उसको साबित शूदा समझा जाए। मज़हबी अक़ीदे का पूरा निज़ाम इसी उसूल पर क़ायम है। अक़ीदे के मामले में अगर कोई शख़्स बाहर से दलील देता है,तो उसका मक़सद इल्म में इज़ाफ़ा करना होता है, न कि उस अक़ीदे को और ज़्यादा साबित करना।

अगर इस बात को उलमा की ज़बान में कहा जाए, तो इसका मतलब यह होगा कि इल्मी तरीक़े के क़ायदे ऐसी बुनियादी बातों पर क़ायम होते हैं, जो यक़ीनी तौर पर साफ़ और मालूम हों।

Axiom is a self-evident truth that requires no proof. A rule or a statement that is accepted as true without proof.

अकैडमिक उस्लूब आज़ादाना तहक़ीक़ (free inquiry) के

उसूल पर क़ायम होता है। इस में ऐसा नहीं होता कि पेशगी तौर पर किसी चीज़ को अबदी हक़ीक़त के तौर पर मान लिया जाए। यहाँ तक कि कोई हक़ीक़त अगर एक बार बज़ाहिर साबित हो जाए, तब भी वो दोबारा तहक़ीक़ (reinquiry) का मौज़ू होती है।

इल्मी उस्लूब में क़त'ई-उद-दल्लाला का उसूल होता है, यानी कुछ बातें ऐसी मानी जाती हैं जिनका मतलब बिल्कुल साफ़ और तय होता है। जबकि अकैडमिक उस्लूब में फ़्री इंक्वायरी का उसूल होता है, यानी हर बात पर सवाल करने, उसे जाँचने और समझने की आज़ादी होती है।

दस इस्लामी ऊसूल

1. इंसानी भाईचारा
2. मज़हबी टॉलरेंस
3. सुलह और एडजस्टमेंट
4. पड़ोसी को तकलीफ़ न देना
5. नरमी का तरीका
6. तवाज़ो
7. बेकार और बेमक़सद कामों से बचना
8. बड़े नुक़सान से बचने के लिए छोटे नुक़सान को बर्दाश्त करना
9. ग़ुस्सा और इंतिक़ाम नहीं
10. अमन का तरीक़ा अपनाना, न कि हिंसा का रास्ता

डायरी 1986

18 जुलाई 1986

मक्का में रसूलुल्लाह ﷺ का सबसे बड़ा दुश्मन अबू लहब था। उसकी बीवी भी दुश्मनी में पूरी तरह उसके साथ थी। यह औरत अबू सुफ़ियान की बहन थी। उसका नाम था अरवा और कुन्नियत उम्मे जमीला।

क़ुरान की सूरह लहब में इस औरत पर सख़्त तब्सिरा है। जब यह सूरह उतरी और मक्का में लोगों ने इसे पढ़ना शुरू किया तो उम्मे जमीला ने यह समझा कि "मुहम्मद ने उसकी मज़म्मत की है।" वह ग़ुस्से में भरी हुई अपने घर से निकली कि रसूलुल्लाह ﷺ जहाँ हों, वहाँ पहुँचे और उनके ऊपर पत्थर मारे।

इसी तलाश में वह हरम में पहुँची। उस वक़्त रसूलुल्लाह ﷺ हज़रत अबू बकर के साथ वहाँ मौजूद थे। हज़रत अबू बकर ने उसको देखकर कहा कि ऐ ख़ुदा के रसूल! उम्मे जमीला आ रही है और मुझे अंदेशा है कि वह आपके साथ कोई बदतमीज़ी करेगी। आपने फ़रमाया कि आने दो। वह मुझको देख नहीं पाएगी। चुनाँचे ऐसा ही हुआ। वह आई मगर वह हरम में आपको देख न सकी।

उसने हज़रत अबू बकर से कहा कि मैंने सुना है कि तुम्हारे साहब ने मेरी मज़म्मत की है है। हज़रत अबू बकर ने कहा कि इस घर के रब की क़सम, उन्होंने तुम्हारी कोई मज़म्मत नहीं की है। यह सुनकर वह वापस चली गई।(मुसतदरक अल-हाकिम, हदीस नंबर 3376)

यह एक क़िस्म का तौरिया (evasive reply) था। उम्मे जमीला को जिस बात की शिकायत थी, वह क़ुरान में उतर रही थी, न कि रसूलुल्लाह ﷺ ने ख़ुद अपने तौर पर फ़रमाई थी। इससे फ़ायदा

उठाकर हज़रत अबू बकर ने कहा कि उन्होंने तो तुम्हारी मज़म्मत नहीं की। नाज़ुक मौक़ों पर इस तरह का कलाम ऐन हिकमत-ए-इस्लामी का तक़ाज़ा है।

19 जुलाई 1986

आज जुलाई 1986 की 19 तारीख़ है। सुबह 4 बजे का वक़्त। मैं अभी तज़कीरुल क़ुरान का आख़िरी सफ़ा (तफ़सीर सूरह अन-नास) लिखकर फ़ारिग़ हुआ हूँ। तज़कीरुल क़ुरान लिखने का काम 1979 के बीच में शुरू हुआ था और इसकी पहली क़िस्त माहनामा अल-रिसाला अगस्त 1979 में शाय हुई थी। आज 19 जुलाई 1986 को इसकी तहरीर का काम आख़िरी तौर पर मुकम्मल हुआ। इस तरह इसके लिखने में पूरे सात साल लग गए।

आज सुबह 3 बजे उठकर मैं तज़कीरुल क़ुरान (सूरह अन-नास) लिखने बैठ गया। इसकी आख़िरी सतरें ऐन उस वक़्त पूरी हुईं जब कि निज़ामुद्दीन की मस्जिद से फ़ज्र की अज़ान की आवाज़ आ रही थी।

तज़कीरुल क़ुरान की तकमील मुझे एक ख़ुदाई मामला नज़र आता है। यह मेरे लिए इतना ज़्यादा मुश्किल काम था कि इसका हर सफ़ा लिखने के बाद मुझे ऐसा महसूस होता था कि अब मैं इसका अगला सफ़ा न लिख सकूँगा।

यही सूरत इसकी किताबत के सिलसिले में पेश आई। दूसरी जिल्द की किताबत मुजाहिद क़ासमी साहब कर रहे थे। वह चूँकि रोज़नामा क़ौमी आवाज़ में मुलाज़िम हैं, वह तज़कीरुल क़ुरान की किताबत का काम सिर्फ़ जुज़ई तौर पर कर पाते थे। इसलिए इसकी किताबत का काम बहुत सुस्त रफ़्तारी के साथ चल रहा था। मगर छह महीने पहले अख़बार क़ौमी आवाज़ में हड़ताल हो गई और वह अभी तक जारी है। इस बिना पर मुजाहिद क़ासमी साहब के औक़ात ख़ाली हो गए और

वह अपना पूरा वक़्त देकर तज़कीरुल क़ुरान की किताबत करने लगे। इस मुद्दत में उन्होंने मुसलसल किताबत करके तज़कीरुल क़ुरान की किताबत मुकम्मल कर दी। अब जब कि तज़कीरुल क़ुरान का तहरीरी काम पूरा हो गया है इसकी किताबत का काम भी आख़िरी मरहले में है। इंशाअल्लाह जल्द ही इसकी दूसरी जिल्द छप जाएगी।

इस सिलसिले में एक और बात इससे भी ज़्यादा अजीब है।

1 फ़रवरी 1963 को जब कि मैं आज़मगढ़ में था, मैंने एक ख़्वाब देखा। उठा तो पूरा ख़्वाब याद नहीं रह गया था। सिर्फ़ ख़्वाब का एक जुज़ "19 जुलाई" ज़ेहन में बाक़ी था। बेदारी के बाद मुझे याद न रहा कि यह किस बात की तारीख़ है। सिर्फ़ इतना याद था कि मैंने ख़्वाब में 19 जुलाई की तारीख़ देखी है।

1963 के इस ख़्वाब के बाद मैं हर साल 19 जुलाई का इंतज़ार करता रहा हूँ। मगर हर साल यही हुआ कि जब 19 जुलाई आई तो उस रोज़ कोई ख़ास नुमायाँ वाक़िया पेश नहीं आया। इस तरह 23 साल बीत गए। 1986 की 19 जुलाई वह पहली तारीख़ है जब कि एक ऐसा वाक़िया पेश आया जो शायद मेरी ज़िंदगी का सबसे ज़्यादा क़ाबिल-ए-ज़िक्र वाक़िया है। और वह यह कि ऐन इसी तारीख़ को मैंने तज़कीरुल क़ुरान का आख़िरी पन्ना लिखा।

"19 जुलाई" को तज़कीरुल क़ुरान का मुकम्मल होना बड़ा अजीब वाक़िया है। इससे मालूम होता है कि यह काम तमामतर ख़ुदा की मदद से हुआ और ऐन ख़ुदा के मंसूबे के तहत तकमील को पहुँचा।

तज़कीरुल क़ुरान ऐसे हालात में मुकम्मल हुई, जब कि हालात बेहद ख़राब हो चुके थे। आज जब मैंने तज़कीरुल क़ुरान को मुकम्मल किया तो मेरे दिल ने कहा: जो काम मुझे करना था वह काम आज पूरा हो गया। यह मेरे लिए इस बात की हिस्सी अलामत है कि ख़ुदा के दीन पर कोई पर्दा न डाल सकेगा, यहाँ तक कि क़यामत आ जाए।

21 जुलाई 1986

बाज़ मरतबा ऐसा होता है कि सोते-सोते कोई बात मुझ पर इल्हाम होता है। ऐसा ही एक वाक़िआ आज पेश आया। आज मेरी तबीयत ठीक नहीं थी। ज़ुहर की नमाज़ के बाद लेटा तो नींद आ गई। 4 बजे अचानक नींद खुली तो मालूम हुआ कि ख़्वाब की हालत में, मैं किसी से बोल रहा था कि इसी हालत में नींद खुल गई।

ख़्वाब की यह गुफ़्तुगू किस से हो रही थी, उसका नाम याद नहीं। अलबत्ता यह याद है कि मैंने तेज़ लहजे में उससे कहा कि यह कहना सही नहीं कि "इस्लाम साइंस के मुताबिक़ है।" सही यह है कि यूँ कहा जाए "इस्लाम हक़ीक़त के मुताबिक़ है।" जो बात भी हक़ीक़त साबित हो वह यक़ीनन इस्लाम के मुताबिक़ होगी। ख़्वाह वह साइंस के ज़रिए साबित हो या किसी और इल्म के ज़रिए। हर साबित-शुदा चीज़ इस्लाम के मुताबिक़ है। क्योंकि इस्लाम ख़ुद हक़ीक़त-ए-वाक़िआ ही का दूसरा नाम है।

तमाम हक़ीक़तें ख़ुदा की पैदा-कर्दा हैं। और इस्लाम भी ख़ुदा का नाज़िल किया हुआ है। गोया दोनों का मुसन्निफ़ एक है। ऐसी हालत में इस्लाम और हक़ीक़त-ए-वाक़िआ में ग़ैर-मुताबक़त का कोई सवाल नहीं। अगर किसी मामले में दोनों के दरमियान ग़ैर-मुताबक़त नज़र आए तो वह इंसान की अपनी कम-इल्मी की बिना पर होगी, न कि इसलिए कि इस्लाम में और उसमें कोई टकराव है।

30 जुलाई 1986

हिन्दुस्तान टाइम्स (30 जुलाई 1986) सफ़ह 16 में एक ख़बर है, जिसका मुख़्तसर उन्वान यह है:

Hero or zero?

ख़बर में बताया गया है कि 29 जुलाई को हिंदुस्तान की लोक सभा में सवाल-ओ-जवाब का वक़्फ़ा था। मेम्बरों ने इंडस्ट्रीज़ के मिनिस्टर

ऑफ़ स्टेट मिस्टर के. के. तिवारी (b.1942) से कुछ सवालात किए। यह सवालात एक foreign digital control system के बारे में थे। मिनिस्टर साहब घबराए हुए थे और जवाब नहीं दे पा रहे थे। इसी पर लोक सभा के स्पीकर मिस्टर बलराम झाकड़ (b.1923) ने मुस्कुराते हुए उनके बारे में कहा:

'Hero of the zero hour.'

अपोज़ीशन बेंच के लोग इसको ले उड़े और मिनिस्टर साहब की ख़ूब हँसी उड़ाई। मिस्टर जे. पाल रेड्डी (b.1942) ने कहा:

'The minister is not hero but zero.'

यह वाक़िआ पढ़कर मुझे क़यामत का मंज़र याद आ गया। क़यामत में यही वाक़िआ ज़्यादा बड़े पैमाने पर होगा। बहुत से लोग जो दुनिया में बज़ाहिर "मिनिस्टर" बने हुए नज़र आते हैं, वह क़यामत में बिल्कुल बे-हक़ीक़त हो जाएँगे। आज कामयाबी की आला गद्दियों पर बैठने वाले लोग कल की दुनिया में नाकामी के आख़िरी मक़ाम पर दिखाई देंगे। आज के "हीरो" कल के "ज़ीरो" होंगे।

कैसा अजीब दिन इंसान के ऊपर आने वाला है। और कैसा अजीब है वह इंसान जो इससे ग़ाफ़िल पड़ा हुआ है।

एक इंटरव्यू

ज़ेर-ए-नज़र इंटरव्यू की पहली क़िस्त अल-रिसाला जुलाई-अगस्त, और दूसरी क़िस्त नवम्बर-दिसम्बर 2025 में शाय हो चुकी है:

स: मदरसों के बहुत से तलबा व उस्ताद दूसरे मज़ाहिब के

लोगों के बारे में ग़लत तसव्वुरात रखते हैं। इस मामले से किस तरह निपटना चाहिए?

ज: इस तरह की ज़ेहनियत दोनों तरफ़ पाई जाती है। मेरे ख़याल में इसकी बड़ी वजह बाहमी तआमुल (interaction) की कमी है। मुसबत तआमुल मनफ़ी ज़ेहनियत को ख़त्म कर देता है। अगर किसी हिंदू का किसी मुसलमान से ताल्लुक़ या दोस्ती नहीं है, उसने सिर्फ़ मुसलमानों के बारे में मीडिया के हवाले से पढ़ा और जाना है, तो मुसलमानों के बारे में उसका तसव्वुर निहायत ग़लत होगा। दूसरी सूरत में अगर एक हिंदू हिंदू-मुसलमान आबादी या मुसलमान मोहल्ले में रहता है तो उसके ज़्यादा इमकानात हैं कि मुसलमानों से मुताल्लिक़ उसका तसव्वुर ज़्यादा मुसबत (positive) होगा। मुसबत तआमुल ग़लतफ़हमियों को दूर करने का सबसे बेहतर ज़रिया है और इसके लिए किसी मसनूई प्रोग्राम या स्कीम की ज़रूरत नहीं है। मैं मेल जोल के मुसबत नतीजे की एक मिसाल देता हूँ। एक गाँव के मक़ामी बाशिंदे वहाँ वाक़े मदरसे और उसके मौलवी हज़रात के बारे में जो वहाँ पढ़ाते थे, निहायत ग़लत और मफ़रुज़ात पर मबनी तसव्वुरात रखते थे। एक दिन बाज़ हिंदुओं के घर में आग लग गई। उसको बुझाने के लिए मदरसे के लड़के दौड़ पड़े। इसके बाद मदरसे के ताल्लुक़ से वहाँ के हिंदुओं का रवैया बदल गया। मदरसा और मदरसा वालों से वह जिस क़दर नफ़रत रखते थे अब वह उनसे उतनी ही मोहब्बत करने लगे। यह है बाहमी ताल्लुक़ और मेल-जोल का मोजिज़ा।

स: क्या आप समझते हैं कि मदरसों में दूसरे मज़ाहिब से मुताल्लिक़ भी पढ़ाया जाना चाहिए?

ज: जी हाँ! बिल्कुल, इससे उनको यह मौक़ा मिलेगा कि वह दूसरे मज़ाहिब के लोगों के साथ ज़्यादा बेहतर ताल्लुक़ात क़ायम कर सकें।

इससे उनकी दावत व इस्लाह की मुहिम को भी तक़्विवयत (support) हासिल होगी। दूसरे मज़ाहिब के बारे में पढ़ाने का मक़सद यह होना चाहिए कि उन मज़ाहिब के बारे में उनके अंदर मारूज़ी (objective) शऊर पैदा हो जाए। दूसरे मज़ाहिब की मुज़म्मत का रवैया तर्क किया जाना चाहिए। आपके लिए ज़रूरी है कि आप अपने पड़ोसी को समझने की कोशिश करें, ख़्वाह आपसे मुताल्लिक़ हों या न हों। ग़ैर-मुनासिब बहस इस्लामी अख़्लाक़ के मुताबिक़ नहीं है। इसलिए मिसाल के तौर पर जब मैं किसी मंदिर, गुरुद्वारा या चर्च वग़ैरा में जाता हूँ तो मैं अपने ज़ेहन को तमाम तअस्सुबात से ख़ाली कर लेता हूँ। इस तरह उनसे बहुत कुछ सीखने का मौक़ा मिला है। मेरा इरादा दूसरों को समझने, दूसरे के मुताल्लिक़ मालूमात हासिल करना होता है, उनकी मज़म्मत करना नहीं। मैं समझता हूँ कि इस्लाम को दूसरों तक पहुँचाना हमदर्दी की बात है, दुश्मनी की नहीं। यह फ़ख़्र करने की बात नहीं है कि एक मज़हब का मानने वाला दूसरे से अफ़ज़ल है। क़ुरान हमसे चाहता है कि हम दूसरों के हमदर्द बनें।

स: दूसरों के साथ मेल-जोल में उलमा के लिए एक बड़ी रुकावट यह भी हो सकती है कि मुसलमान मुख़ालिफ़ फ़िज़ा की वजह से उन्हें यह लगता हो कि लोग उन्हें क़ुबूल नहीं करेंगे क्या आप इससे मुत्तफ़िक़ हैं?

ज: इस ताल्लुक़ से मैं यह कहना चाहूँगा कि तआरुफ़-ए-इस्लाम की राह में हर तरह की मशक़्क़त को बरदाश्त करने और अपनी अना की क़ुर्बानी देने की ज़रूरत है। मैं ख़ुद अपनी मिसाल देता हूँ। जब मैं एक अरसे पहले दिल्ली में आया तो मुझे मालूम हुआ कि हिंदुओं का एक ग्रुप हफ़्ते में एक मर्तबा एक जगह मिला करता है। मुझे शदीद ख़्वाहिश हुई कि मैं उनकी मीटिंग में शरीक हूँ। चुनाँचे मैं शरीक होने लगा। एक दिन एक शख़्स ने एक मसले के बारे में मुझसे पूछा जो उसके गुमान के मुताबिक़ क़ुरान से ताल्लुक़ रखता था। मैंने कहा कि यह बात क़ुरान

में मौजूद नहीं है, उसने इस पर इसरार किया। उसने कहा कि वह उर्दू जानता है और उसने क़ुरान का तर्जुमा पढ़ा है। उसने कहा कि मैं इससे वाक़िफ़ नहीं हूँ। मेरे लिए यह बात एक तरह की बेइज़्ज़ती थी। साथ ही, क़ुरान के ताल्लुक़ से उसके तहरीरी रवैये से मुझे शदीद दुख पहुँचा। लेकिन मैंने यह सब बरदाश्त किया। मैंने उसके साथ कोई सख़्ती का रवैया नहीं अपनाया। चुनाँचे इसके नतीजे में वह आगे चलकर मेरा दोस्त बन गया। इस्लाम से मुताल्लिक़ गुफ़्तगु और दावत के अमल में इस क़िस्म के सब्र-ओ-एराज़ की ज़रूरत है।

स: मदरसों पर लगाए जाने वाले दहशतगर्दी के इल्ज़ाम से मुताल्लिक़ आप क्या कहना चाहेंगे?

ज: यह बिल्कुल बे-बुनियाद इल्ज़ाम है। कोई भी मदरसा दहशतगर्दी की सरगर्मियों में शामिल नहीं है। पाकिस्तान के बाज़ मदरसों के ताल्लुक़ से यह बात ज़रूर कही जा सकती है। लेकिन हक़ीक़त में यह भी कोई मदरसे का ज़ाहिरा (phenomenon) नहीं, बल्कि पाकिस्तानी ज़ाहिरा है। पाकिस्तान के पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी बराए दिफ़ा (parliamentary secretary for defence) ने अभी चंद दिन पहले पाकिस्तानी पार्लियामेंट में हिंदुस्तान के ख़िलाफ़ जिहाद की बात कही है। यह बिल्कुल पागलपन की बात है। यह शख़्स मदरसे का फ़ाज़िल नहीं है, यूनिवर्सिटी का तालीमयाफ़्ता है। इसलिए मैंने कहा कि पाकिस्तान के बाज़ मदरसों का दहशतगर्दी में मुलव्विस होना एक पाकिस्तानी मामला है। यह पाकिस्तान में सियासी मफ़ादात (benefits) की ख़ातिर इस्लाम को तोड़-मरोड़ कर पेश करने का नतीजा है। यह निहायत ग़लत बात है कि मीडिया का एक हलक़ा हिंदुस्तानी और पाकिस्तानी मदरसों को एक ही नज़र से देखता है, और यह कि हिंदुस्तानी मदरसों को भी पाकिस्तानी मदरसों की तरह दहशतगर्दी में मुलव्विस समझता है।

स: क्या आप पाकिस्तान में इस्लाम की अपनी मन-मानी तशरीह के मज़कूरा बाला नुक्ते पर मज़ीद रोशनी डालना चाहेंगे?

ज: असल में पाकिस्तान की तहरीक हिंदुस्तानी मुसलमानों के लिए एक अलग मुल्क की माँग के मुतालबे और जद्दोजहद पर मबनी थी। इसके लिए इस्लाम को एक ज़रिया के तौर पर इस्तेमाल किया गया। आप इसका तो मुतालबा कर सकते हैं कि आपको अलग से अपना मुल्क चाहिए, लेकिन इसके लिए आपको इस्लाम को इस्तेमाल करने की इजाज़त नहीं। यह तरीक़ा सही नहीं है। पाकिस्तान की तहरीक के अलमबरदार कहते थे कि इस्लाम और पाकिस्तान दोनों में कोई फ़र्क़ नहीं है, इसलिए उन्हें इस्लाम को मज़बूत करने और फ़रोग़ देने के लिए एक अलाहिदा मुल्क की ज़रूरत है। यह बिल्कुल ग़लत बात थी। इस्लाम या कोई और मज़हब एक दुनिया के एक हिस्से को हासिल करके मज़बूत नहीं किया जा सकता है। वह सिर्फ़ इस तरह मज़बूत व मुस्तहकम किया जा सकता है कि अफ़राद के दिलों और दिमाग़ों में इसकी जड़ें मज़बूत की जाएँ। इसी हक़ीक़त को बयान करते हुए रसूलुल्लाह ﷺ ने अपने दिल की जानिब इशारा करके फ़रमाया था कि तक़वा और नेकी यहाँ रहती है। (सहीह मुसलिम, हदीस नंबर 2564)

किसी चीज़ का नाजायज़ फ़ायेदा उठाना तमाम बुराइयों की जड़ है और चूँकि पाकिस्तान के लीडरों ने पाकिस्तान के आग़ाज़ से ही इस्लाम को अपने मफ़ाद के लिए इस्तेमाल किया, इसलिए यह बात बिल्कुल फ़ितरी थी कि मुल्क इस्लाम के नाम पर क़ायम होने के बावजूद कशमकश और मारधाड़ का गहवारा बन जाए।

स: ऐसा क्यों है कि मदरसों में ज़्यादा तर इंतिहाई ग़रीब ख़ानदानों के बच्चे ही तालीम के लिए आते हैं?

ज: इसकी वजह तालीमी निज़ाम में पाई जाने वाली दो अलग धाराओं का होना है, जिसका मैंने ऊपर हवाला दिया। दूसरी हक़ीक़त

यह है कि अक्सर वालिदैन अपने बच्चों को मॉडर्न स्कूलों में भेजना चाहते हैं, क्योंकि मदरसों से पढ़कर निकलने वालों की तनख़्वाह बहुत कम होती है। मदरसों के उस्तादों की तनख़्वाह को काफ़ी बेहतर बनाया जाना चाहिए। अगर ऐसा हो तो यह उम्मीद की जा सकती है कि ज़हीन और ख़ुशहाल ख़ानदानों के के बच्चे भी मदरसों की तरफ़ आएँगे। पहले मदरसों से बहुत ज़हीन और समझदार स्कॉलर्स और लीडर्स निकले, जिन्होंने हिंदुस्तान की सियासी ज़िंदगी में बहुत अहम रोल अदा किया। लेकिन अब ऐसा नहीं हो रहा है और बाज़ दूसरे एतिबारात से यह उन मदरसों में आने वाले तबक़े का भी नतीजा है।

स: आप मीडिया के बड़े हलक़े में मदरसों की शबीह (image) के बिगाड़े जाने के बारे में क्या कहना चाहेंगे?

ज: मीडिया ज़्यादा से ज़्यादा आमदनी पैदा करने में यक़ीन रखता है। वह मार्केट बनाने के लिए नाज़िरीन के सामने हॉट न्यूज़ पेश करने की फ़िक्र में यक़ीन रखता है। मीडिया को सॉफ्ट न्यूज़ में दिलचस्पी नहीं होती, क्योंकि उससे आमदनी नहीं होती। इसलिए वह सनसनीखेज़ और सेलेक्टिव रिपोर्टिंग का तरीक़ा इख़्तियार करता है। एक दिन मैं एक रेडियो स्टेशन की हिंदी सर्विस सुन रहा था। मॉरीशस के एक सुनने वाले ने टेलीफ़ोन पर पूछा कि "मॉरीशस" को कवर क्यों नहीं किया जाता, जबकि यहाँ हिंदी बोलने-समझने वाले लोग काफ़ी तादाद में हैं। प्रोग्राम पेश करने वाले ने जवाब दिया कि मीडिया सिर्फ़ गरम ख़बरों में दिलचस्पी रखता है, जबकि मॉरीशस से गरम ख़बरें नहीं मिलतीं। उसने आगे कहा कि कुछ गरम ख़बरें पैदा कीजिए, फिर हम आपके मुल्क के बारे में ख़बरें नशर करेंगे। अगर आप मीडिया के रवैये में बदलाव चाहते हैं, तो आपको लोगों की सोच बदलनी होगी।

स: मरकज़ी मदरसा बोर्ड की हुकूमती तजवीज़ पर आप क्या कहना चाहेंगे?

ज:नज़रियाती तौर पर तो यह सही लगता है, ख़ास तौर पर इस लिहाज़ से कि इससे मदरसों के निज़ाम को बेहतर ढंग से चलाने में मदद मिलेगी। लेकिन असल मुश्किल सरकार और मदरसों के बीच अच्छे रिश्ते की है। इस बिना पर इस तरह के बोर्ड का फ़ायदा बहुत ज़्यादा नहीं होगा। बहुत से उलमा हुकूमत के इरादों पर शक करतें हैं। बहरहाल अगर यह बोर्ड वजूद में आ जाता है तो इसकी पॉलिसिया और सरगर्मियाँ उलमा के मश्वरों से तय की जानी चाहिए।

ग़ैर-नज़आई तरीक़ा

इज्तिमाई ज़िंदगी में काम करने के दो तरीक़े होते हैं। एक टकराव का तरीक़ा होता है और दूसरा बिना टकराव का तरीक़ा। आज के ज़माने में जो सियासी तरीक़ा आम है, वह ज़्यादातर टकराव का तरीक़ा होता है। यानीहुकूमत में मौजूद पार्टी से टकराव की बुनियाद पर अपने काम का तरीक़ा तय करना।

इस मामले में दूसरा तरीक़ा तामीरी तरीक़ा है। तामीरी तरीक़ा टकराव से दूर रहकर अपनाया जाता है। पैग़ंबर-ए-इस्लाम की सुन्नतों में से एक सुन्नत वह है, जिसे टकराव से बचने का तरीक़ा कहा जा सकता है। इसका मतलब यह है कि मौजूदा हालत (status quo) को बदलने की कोशिश न की जाए, बल्कि पूरी तरह टकराव से बचते हुए अपने मंसूबे को पूरा किया जाए।

दोहरा ख़सारा

बीसवीं सदी में जब मग़रिबी तर्ज़ की तालीमगाहें क़ायम हुईं तो बाज़ मुसलमान उलमा (thinkers) ने उन्हें ईमान के लिए ख़तरा समझकर "क़त्लगाह" का दर्जा दे दिया, और कुछ लोगों ने जज़बात में आकर अपने बच्चों को इन दर्स-गाहों से मुकम्मल तौर पर दूर कर दिया। मगर बाद में मालूम हुआ कि ये इदारे आला माद्दी तरक़्क़ी के दरवाज़े हैं, चुनांचे नई नस्ल के मुसलमान नौजवान तेज़ी से उनकी तरफ़ बढ़ने लगे। अब लोगों ने इन्हीं "क़त्लगाहों" को तरक़्क़ी का ज़ीना समझा और बिना ऐलान अपने बच्चों के लिए उनका दरवाज़ा खोल दिया। नतीजतन नई नस्ल के नौजवान उन कॉलेजों और यूनिवर्सिटियों की डिग्रियाँ लेकर मुल्क के अंदर और बाहर बड़ी बड़ी माद्दी तरक़्क़ी हासिल करने लगे।

इबतिदाई तौर पर यह हुआ कि जो मुसलमान नौजवान मग़रिबी मुल्कों में तालीम या मुलाज़मत के लिए बसे, उन्होंने अपने घरवालों को मग़रिबी शहरों में बुलाया, ताकि उनके वालिदैन भी जदीद तरक़्क़ियों के फ़ाइदों से महरूम न रहें। यह इबतिदाई दौर की बात थी। अब दूसरी और तीसरी नस्ल में ख़ामोशी के साथ यह रुझान बदल रहा है। अब नौजवान चाहते हैं कि उनके वालिदैन अपनी पुरानी बस्तियों में रहें, और वे ख़ुद कभी-कभार उनसे मिल लें या टेलीफ़ोन पर हालचाल पूछ लें। पहले बच्चे अपने वालिदैन को अपने लिए असासा (asset) समझते थे, अब वो उनको बोझ समझने लगे हैं। इस तबदीली के नतीजे में कुछ वालिदैन अपने नए माहौल में समाजी तौर पर तन्हाई महसूस करते हैं। यह सूरत-ए-हाल ऐसे ख़ानदानों के लिए एक नफ़सियाती और समाजी चैलेंज बनती जा रही है।

ऐसे लोगों के लिए दोहरा ख़सारा है। पहले यह लोग अपने वतन से बेवतन हुए, और अब वे अपने नए वतन में अजनबी बनते जा रहे हैं। इस मसले का हल क्या है—इसको बताने की ज़रूरत नहीं। इस मसले का बुनियादी पहलू सब के लिए वाज़ेह है, और इसका हल भी उसूली तौर पर मालूम है, मगर उसे इख़्तियार करने के लिए जिस अमली क़ीमत की ज़रूरत होती है, वह अक्सर अफ़राद या ख़ानदान अदा करने के लिए तैयार नहीं होते। वह है इन ममालिक में दीन-ए-इस्लाम का मुसबत अंदाज़ में तआरुफ़ पेश करना।

तशब्बुह-बिल काफ़िर

ग़ैर-मुसलमानों की मुशाबहत से बचना इस्लामी शरीअत के मज़बूत उसूलों में से है। इसका सबूत रसूलुल्लाह ﷺ का यह फरमान है:

مَنْ تَشَبَّهَ بِقَوْمٍ فَهُوَ مِنْهُمْ

यानी, जिसने किसी क़ौम की मुशाबहत की, वह उन्हीं में से है।(सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 4031) इस मौज़ू पर उलमा-ए-इस्लाम ने मुस्तक़िल किताबें लिखी हैं, मसलन अल्लामा इब्न तैमिया की किताब "इक़्तिदा अस-सिरात अल-मुस्तक़ीम मुख़ालिफ़त असहाब अल-जहीम"।

तशब्बुह बिल-कुफ़्फ़ार को समझने के लिए दर्ज ज़ेल दो उसूल बुनियादी हैसियत रखते हैं:

वे उमूर जो ख़ैर, नफ़ा और इंसानी भलाई पर मबनी हों, उनमें मुशाबहत ममनू नहीं है। जैसा कि रसूलुल्लाह ﷺ ने बद्र के क़ैदियों से अंसार के बच्चों को लिखना सिखाने का काम लिया था।

فَجَعَلَ رَسُولُ اللهِ ﷺ فِدَاءَهُمْ
أَنْ يُعَلِّمُوا أَوْلَادَ الْأَنْصَارِ الْكِتَابَةَ
(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 2216)

इससे मालूम होता है कि इल्म और तकनीक की वे चीज़ें, जिनसे इंसानी समाज की भलाई जुड़ी हो, सिर्फ़ इस वजह से नहीं छोड़ी जा सकतीं कि वे किसी दूसरी क़ौम में राइज हैं।

इसकी एक और मिसाल यह है कि आपने शाम के ईसाइयों की बनाई हुई क़मीस भी इस्तेमाल की, जो उस वक़्त बाइज़न्टाइन हुकूमत के मातहत रहते थे। हदीस में इस कपड़े के लिए जुब्बा-ए-शामिया या जुब्बा-ए-रूमिया के अल्फ़ाज़ आए हैं। (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस 363; मुसनद अहमद, हदीस 18239)

इससे पता चलता है कि ग़ैर-इस्लामी समाज में इस्तेमाल होने वाली आम दुनियावी चीज़ों को अपनाना ग़ैर-मुसलमानों की मुशाबहत नहीं कहलाता, जब तक कि उन चीज़ों में कोई मज़हबी या अख़लाक़ी बुराई न हो।

इसके बरअक्स, वे उमूर जिनसे समाज में शर, फ़साद या दीन की हदों से निकल जाए, उनमें ग़ैर-मुस्लिमों की मुशाबहत हराम और मर्दूद है। एक मुसलमान ऐसा कोई काम दीन के नाम पर अंजाम दे (मसलन सुसाइड बॉम्बिंग वग़ैरह), और उसके जवाज़ के लिए वह ग़ैर-मुस्लिमों की मिसालें पेश करे तो यह ग़ैर-शरई मुशाबहत कहलाएगी। क्योंकि अल्लाह ताला की नज़र में वही काम दीन का है, जो हुदूदुल्लाह के अंदर हो। (अन-निसा, 4:14)

कोई भी दीनी काम, अगर शरीअत की तय की हुई हदों से बाहर हो, या उससे किसी की जान या माल को नुक़सान पहुँचे, तो वह न

सिर्फ़ ग़ैर-मुस्लिमों की मुशाबहत के दायरे में आता है, बल्कि बंदों के हक़ मारने में भी शामिल होता है। ऐसा हर काम अल्लाह तआला के नज़दीक सख़्त जवाबदेही और सज़ा का हक़दार होगा।

(मौलाना फ़रहाद अहमद)

ज़िंदगी की तल्ख़िया

आप किसी आदमी से मिलें। थोड़ी देर की बातचीत के बाद आप पाएँगे कि उसके पास एक तल्ख़ याद है, और उसकी बिना पर वह यह समझता है कि वह एक बदक़िस्मत इंसान है। ब-ज़ाहिर वह अपनी बातों से यह तास्सुर देता है कि दूसरे लोग ख़ुशक़िस्मत हैं। यह सिर्फ़ मैं हूँ, जो बदक़िस्मती के हालात में जी रहा हूँ।

मगर यह एक बेख़बरी की बात है। हक़ीक़त यह है कि हर इंसान के लिए ज़िंदगी तल्ख़ियों के तजुर्बात का नाम है। किसी के लिए एक क़िस्म का तल्ख़ तजुर्बा, और किसी के लिए दूसरे क़िस्म का तल्ख़ तजुर्बा। इस दुनिया में कोई भी शख़्स तल्ख़ तजुर्बे से बचा हुआ नहीं।

मगर होता यह है कि कोई औरत या मर्द जिस तल्ख़ तजुर्बे से वह ख़ुद गुज़र रहा हो, उसको वह ज़ाती तौर पर महसूस करता है, जब कि दूसरे इंसान का तल्ख़ तजुर्बा उसके लिए सिर्फ़ एक दूर की सुनी-सुनाई ख़बर होती है। अपना तल्ख़ तजुर्बा उसके लिए ख़ुद उसके अपने सीने का दर्द होता है, जब कि दूसरे का तल्ख़ तजुर्बा उसके लिए अपना दर्द नहीं होता। इस बिना पर वह शऊरी या ग़ैर-शऊरी तौर पर यह समझ लेता है कि मैं तो तल्ख़ तजुर्बे को भुगत रहा हूँ, जब कि दूसरे लोग इससे बचे हुए हैं। यह फ़र्क़ सिर्फ़ सोच का फ़र्क़ होता है, न कि हक़ीक़त का

फ़र्क़। यह फ़र्क़ इसलिए होता है कि आदमी एक हक़ीक़त से बा-ख़बर होता है, और दूसरी हक़ीक़त से वह बेख़बरी का शिकार होता है।

यह ज़ाहिरा इतना ज़्यादा आम है कि शायद इससे कोई भी मर्द या औरत बचा हुआ नहीं। ख़ुशी दरअसल इसी का नाम है कि आदमी इस बेख़बरी से बाहर आए। वह ग़ौर-ओ-फ़िक्र के ज़रिए इस हक़ीक़त को जान ले कि ज़िंदगी की तल्ख़ियाँ ज़िंदगी का लाज़िमी हिस्सा हैं। ज़िंदगी एक तल्ख़ तजुर्बा है। तल्ख़ी के एहसास से सिर्फ़ वह शख़्स ख़ाली हो सकता है, जो मौत का शिकार होकर अमलन इस दुनिया से रुख़्सत हो जाए। अपनी बेख़बरी को तोड़िए, और फिर ऐसा नहीं होगा कि आप इस ग़लतफ़हमी के शिकार हों कि आप एक बदनसीब इंसान हैं, और दूसरे तमाम लोग ख़ुशनसीब इंसान।

ख़बरनामा इस्लामी मरकज़ 287

- जनाब अमजद अहमद रायचूर (ट्रेन मैनेजर, साउथ इंडिया रेलवे) की सबसे छोटी बेटी मिस नशरा बतूल की शादी की तक़रीब 18 अक्टूबर 2025 को ग्रीन पैलेस फंक्शन हॉल, रायचूर में मुनाक़िद हुई। इस मौके पर CPS रायचूर की जानिब से एक क़ुरआनी स्टॉल का एहतिमाम किया गया। गुलबर्गा से मौलाना फयाज़ुद्दीन उमरी और हैदराबाद से मौलाना अब्दुस्सलाम उमरी ने भी इसमें शिरकत की। बहुत से मेहमानों ने क़ुरान की तक़सीम के इक़दाम को पसंद किया, और मुख्तलिफ़ ज़बानों में क़ुरान के तराजिम और अंग्रेज़ी किताबें वह लेकर गए। (ज़हीरुद्दीन ख़्वाजा, रायचूर)
- शादी के ताल्लुक से मिस्टर साजिद अहमद ख़ान (नागपुर टीम) ने

एक निहायत सबक़-आमोज़ तजुर्बा शेयर किया है, जो कि हस्ब-ए-ज़ैल है। मिस्टर शाहिद का ताल्लुक नागपुर से है, वह रेलवे में सर्विस करते हैं। उन्होंने अपना वाक़िया बताया कि उनकी बेटी को कोरोना (Corona) से पहले HSC तक खेल-कूद में दिलचस्पी थी, पढ़ने-लिखने में ज़्यादा दिलचस्पी नहीं थी। लेकिन कोरोना के बाद उसको न सिर्फ़ अपनी पढ़ाई में दिलचस्पी पैदा हुई और उसने MBA किया, बल्कि उसको मज़हबी किताबों के मुताले का भी शौक़ पैदा हुआ। चुनांचे उसने Amazon से मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब का English तर्जुमा-ए-क़ुरान मंगवाया और उसे पढ़ा। शाहिद साहब कहते हैं कि क़ुरान पढ़ने के बाद उसकी ज़िंदगी बिल्कुल बदल गई। उसको लगा कि अगर उसने क़ुरान को तर्जुमा के साथ नहीं पढ़ा होता तो उसकी ज़िंदगी ज़ाया हो जाती। तर्जुमा-ए-क़ुरान मुकम्मल करने के बाद उसने मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब की अंग्रेज़ी तफ़सीर मंगवा कर पढ़ी। फिर उसको ये ख़्याल पैदा हुआ कि जिस तरह क़ुरान का तर्जुमा पढ़कर मेरी ज़िंदगी तब्दील हुई है, तो यह उसकी ज़िम्मेदारी होती है कि वह इस तर्जुमा-ए-क़ुरान को हर इंसान तक पहुँचाए। इस दरमियान उसकी शादी तय हो गई। चुनांचे शादी की प्लैनिंग के मौके पर उसने अपने वालिद से कहा कि शादी की गैर-ज़रूरी रसूमात में ख़र्च करने से बेहतर होगा कि सारे मेहमानों के लिए एक रिटर्न गिफ्ट के तौर पर हम क़ुरान तक़सीम करें। लिहाज़ा उन्होंने प्लान किया, और तमाम मेहमानों के दरमियान 350 से ज़्यादा तराजिम-ए-क़ुरान के नुस्खे तक़सीम किए गए। तमाम मेहमानों ने शुक्रिया और ख़ुशी के साथ क़ुरान का तर्जुमा लिया। हिंदी, मराठी और अंग्रेज़ी तराजिम-ए-क़ुरान लेने वालों का यह तास्सुर था कि "हम इसको तलाश कर रहे थे और हम इसको ज़रूर पढ़ेंगे।"

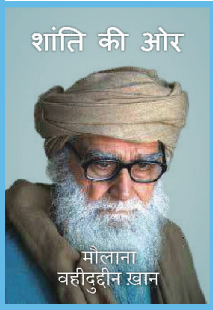
- बैन-उल-अक़वामी तलबा की आमद: 18 नवंबर 2025 को CPS इंटरनेशनल सेंटर, नई दिल्ली में Henry Martyn Institute, हैदराबाद के बैन-उल-अक़वामी तलबा का एक ग्रुप आया। उनके साथ इंटरैक्टिव सेशन हुआ, जिसमें तलबा ने इस्लाम, मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान की तालीमात, और CPS के विज़न और सेंटर की सरगर्मियों के बारे में बामानी तबादला-ए-ख़याल किया। प्रोग्राम के इख़्तिताम पर तमाम तलबा को अंग्रेज़ी तर्जुमा-ए-क़ुरान और दूसरे तआरुफ़-ए-इस्लाम पर मबनी लिटरेचर दिए गए।
- क़ौमी यूथ कन्वेंशन: हरिजन सेवक संघ एक NGO है, जिसकी बुनियाद महात्मा गांधी ने 1932 में रखी थी। 20 नवंबर 2025 को इसने Ministry of Culture, Government of India के तआवुन से National Youth Convention का इनइक़ाद किया। यह कन्वेंशन ओडिशा के पहले वज़ीर-ए-आला डॉक्टर हरीकृष्ण महताब (1899-1987) की 125वीं यौम-ए-पैदाइश की मुनासिबत से मुनाक़िद किया गया, जो मुजाहिद-ए-आज़ादी और गांधीवादी रहनुमा थे। इस मौके पर डॉक्टर रजत मल्होत्रा ने CPS इंटरनेशनल की नुमाइंदगी की और इस्लाम में बैन उल मज़ाहिब मकालमे के अहमियत पर ख़िताब किया।
- यूथ सेशन, अमेरिका: 12 दिसंबर 2025 को CPS USA ने मैसाचुसेट्स में Wayland Community के यूथ ग्रुप के साथ एक सेशन मुनाक़िद किया, जिसका मौज़ू था: "इस्लाम के बारे में ग़लतफहमियाँ"। इस प्रोग्राम के ज़रिए वाज़ेह किया गया कि ग़लतफहमियाँ किस तरह आसानी से एक ज़रीये से दूसरे ज़रीये तक मुंतक़िल होती हैं और कैसे उसको दूर किया जा सकता है। इसके साथ ये रहनुमाई भी की गई कि आपस में पैदा होने वाली ग़लतफहमियाँ को दूर करने में ख़ुद एहतिसाबी और ग़ौर-ओ-फ़िक्र

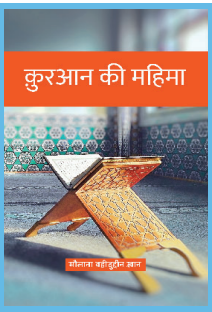
कितनी अहमियत रखती है। इसको सिर्फ़ दोस्ताना माहौल और बाहमी गुफ़्त-ओ-शुनीद के ज़रिए ही दूर किया जा सकता है, न कि नज़ाई माहौल पैदा करने से। आख़िर में तमाम शुरका को मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब की अंग्रेज़ी किताब, "क़ुरानिक विज़डम" बतौर तोहफ़ा पेश की गई।

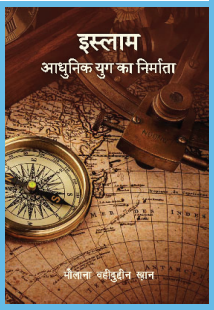
- Assalamu Alaikum, I'm Iram. I wanted to send this email to express my heartfelt gratitude to the CPS International for responding so quickly to my query and, from then on, for putting a smile on my face and bringing more clarity to my life through my journey of understanding the true essence of Islam. Sometimes, as a 26-year-old, life can get confused. After my sessions with Ms. Fathima Sarah (Bengaluru), I have genuinely fallen in love with Islam all over again because of its intricacies and how beautifully Allah has created everything to make perfect sense. My love for my Creator and His mercy has grown tremendously, and I pray it only continues to grow, Insha'Allah. I am deeply grateful to Ms. Fathima Sarah and the organization for helping me understand Allah's creation plan, why we exist, and how much love Allah truly has for us. In a world full of noise and chaos, I'm truly thankful that Allah guided me to discover the true meaning of Islam, hope, and peace. (iram******@gmail.com, on 30 Oct 2025)

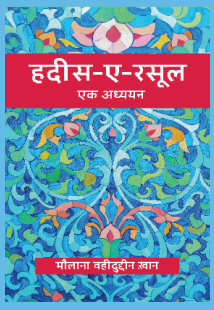
No. 50760/90

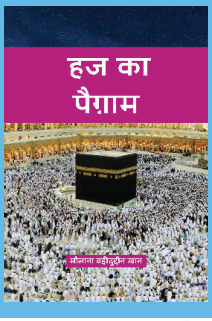
शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें।

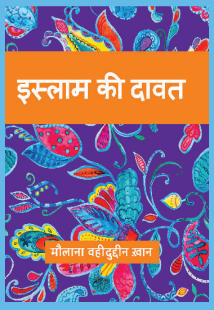




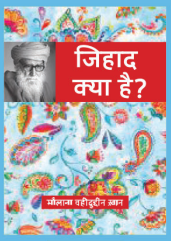




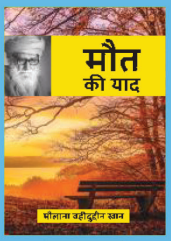




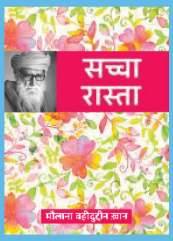
आध्यात्मिक सेट



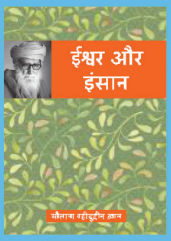
₹30/-



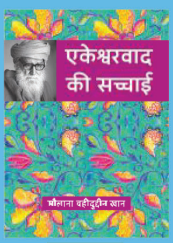
₹40/-



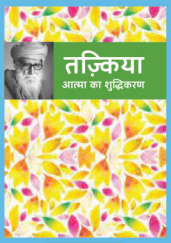
₹20/-



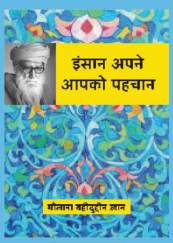
₹40/-



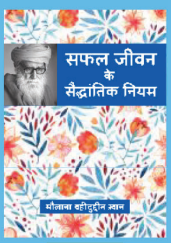
₹30/-



₹45/-



₹20/-



₹40/-